प्रथम संस्करण, १९५७

मूल्य ३ रुपये ७५ नये पैसे

प्रकाशक
नीलाभ प्रकाशन
५, खुसरोबाग रोड, इलाहाबाद

मुद्रक
भार्गव प्रेस, प्रयाग,

लाजवन्ती

लाजवन्ती फ़िल्म-जगत के प्रसिद्ध कथाकार, लेकिन उससे पहले उर्दू के प्रमुखतम लेखक राजेन्द्र सिंह बेदी की कहानियों का प्रथम संग्रह है। लाजवन्ती की कहानियाँ हिन्दी पाठकों को कहानी-कला के अनोखे गलियारों में ले जाती हुई मानवता के विशाल राजपथ पर ले जायँगी।

बेदी की कहानियों का दूसरा संग्रह—दीवाला—और उनके अछूते नाटकों का संग्रह 'सात खेल' शीघ्र ही हिन्दी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया जायगा।

प्रकाशकीय

राजेन्द्र सिंह उर्दू के प्रमुख कहानी लेखकों की प्रथम पंक्ति में गिने जाते हैं। प्रसिद्ध उर्दू आलोचक श्री सरूर तो उन्हें उर्दू का सब से ऊँचा कथाकार मानते हैं।

बेदी अकेले ऐसे कथा-लेखक हैं जिनकी कहानियों में कला और आधारभूत विचार में अभूतपूर्व सामंजस्य है। जहाँ दूसरे कथाकार केवल शैली की प्रवहमानता अथवा रोमानियत के सहारे कहानी को निभा ले जाते हैं, वहाँ बेदी जीवन की भरपूर अभिव्यक्ति कर, भाषा और कला के सुन्दर सम्मिश्रण से एक चमत्कार पैदा कर देते हैं।

कहानी की दुनिया में बेदी का सबसे पृथक एक ऐसा रंग है जिसकी नकल आज तक कोई नहीं कर सका। बेदी का रंग है— अछूते आधारभूत विचारों का चुनाव, उनके निभाव में उसतरे की धार की-सी बारीकी, जीवन का गहन अध्ययन, ब्योरों की यथार्थता और पात्रों का

अपूर्व चरित्र-चित्रण ! अपनी कला में बेदी ने चैखव की दयानतदारी और मानव-प्रेम, मापासाँ की ज़िन्दगी पिये हुए उदासी, पो और ओ' हेनरी का हस्तलाघव—सब को इकट्ठा कर दिया है। इस के बावजूद बेदी का आर्ट शिल्प के लिहाज़ से राष्ट्रीय और वस्तु के लिहाज़ से अंतर्राष्ट्रीय है। बेदी की कहानियों पर भारत को गर्व है और वे किसी भी उत्कृष्ट साहित्य के बराबर रखी जा सकती हैं।

नीलाभ प्रकाशन ने बेदी के समस्त साहित्य को हिन्दी पाठकों के सम्मुख रखने की योजना बनायी है। **लाजवन्ती**—उनका प्रथम कहानी संग्रह हिन्दी पाठकों के सम्मुख है, जिसमें बेदी की कुछ अमर कहानियाँ संग्रहीत हैं।

—प्रकाशक

उपेन्द्रनाथ अश्क के नाम

—अपना लहू भी सुर्खी-ए शाम-ो-सहर में है ?

लाजवन्ती

क्रम

भोला

मैंने माया को पत्थर के एक बर्तन में मक्खन रखते देखा। छाछ की खटास को दूर करने के लिए माया ने बर्तन में पड़े हुए मक्खन को कुएँ के साफ़ पानी से कई बार धोया। इस तरह मक्खन इकट्ठा करने का विशेष कारण था। ऐसी बात आम तौर पर माया के किसी सम्बन्धी के आने का पता देती थी। हाँ, अब मुझे याद आया। दो दिन के बाद माया का भाई अपनी विधवा बहन से राखी बँधवाने के लिए आने वाला था। यों तो अक्सर बहनें भाइयों के घर जाकर उन्हें राखी बाँधती हैं, पर माया का भाई अपनी बहन और भानजे से मिलने के लिए आप ही आ जाया करता था और राखी बँधवा लिया करता था। राखी बँधवाकर वह अपनी विधवा बहन को यही विश्वास दिलाता था कि यद्यपि उसका सुहाग लुट गया है, पर जब तक उसका भाई जीवित है, उसकी रक्षा, उसकी हिफ़ाज़त की ज़िम्मेदारी वह अपने कन्धों पर लेता है।

नन्हें भोला ने मेरी इस धारणा की पुष्टि कर दी। गन्ना चूसते हुए उसने कहा, "बाबा, परसों मामा जी आयेंगे न ?"

मैंने अपने पोते को प्यार से गोद में उठा लिया। भोला का शरीर

बहुत नर्म व कोमल था और उसकी आवाज़ बहुत सुरीली थी, जैसे कमल की पत्तियों की कोमलता और सफ़ेदी, गुलाब की लाली और बुलबुल के सुरीलेपन को इकट्ठा कर दिया गया हो। यद्यपि भोला मेरी लम्बी और घनी दाढ़ी से घबराकर मुझे अपना मुँह चूमने की इजाज़त न देता था, फिर भी मैंने ज़बरदस्ती उसके लाल कपोलों को प्यार से चूम लिया। मैंने मुस्कराते हुए पूछा, "भोले, तेरे मामा जी.......तेरी माता जी के क्या होते हैं?"

भोला ने तनिक रुककर जवाब दिया, "मामा जी।"

माया ने स्तोत्र पढ़ना छोड़ दिया और खिलखिलाकर हँसने लगी। मैं अपनी पुत्र-वधू के इस तरह खुलकर हँसने पर मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हुआ। माया विधवा थी और समाज उसे अच्छे कपड़े पहनने और खुशी की बातों में हिस्सा लेने से भी रोकता था। मैंने अनेक बार माया को अच्छे कपड़े पहनने, हँसने-खेलने की बात कहते हुए समाज की परवाह न करने के लिए कहा था, लेकिन माया ने स्वयं अपने-आपको समाज के दम घोंटने वाले आदेशों के अधीन कर लिया था। उसने अपने सारे अच्छे कपड़े और गहनों की पिटारी एक सन्दूक में बन्द करके चाभी एक जोहड़ में फेंक दी थी।

माया ने हँसते हुए अपना पाठ जारी रखा—

हरी हर-हरी हर-हरी हर-हरी,
मेरी बार क्यों देर इतनी करी?

फिर उसने अपने लाल को प्यार से बुलाते हुए कहा, "भोले, तुम नन्हीं के क्या होते हो?"

"भाई," भोला ने उत्तर दिया।

"इसी तरह तेरे मामा जी मेरे भाई हैं!"

भोला यह बात न समझ सका कि एक ही व्यक्ति किस तरह एक ही समय में किसी का भाई और किसी का मामा हो सकता है। वह तो अब तक यही समझता आया था कि उसके मामा जी उसके बाबा जी के भी मामा जी हैं। भोला ने इस झगड़े में पड़ने की कोशिश न की और उचककर माँ की गोद में जा बैठा और अपनी माँ से गीता सुनाने का आग्रह करने लगा। वह गीता सिर्फ़ इस कारण सुनता था कि वह कहानियों का शौक़ीन था और गीता के अध्याय के अन्त में माहात्म्य सुनकर वह बड़ा प्रसन्न होता और फिर जौहड़ के किनारे उगी हुई दूब की मख़मली तलवारों में बैठकर घंटों उन माहात्म्यों पर ग़ौर किया करता।

मुझे दोपहर को अपने घर से छः मील दूर अपने खेतों को हल पहुँचाने थे। बूढ़ा शरीर, उस पर मुसीबतों का मारा हुआ। जवानी के दिनों में तीन-तीन मन बोझ उठाकर दौड़ा किया, लेकिन अब बीस सेर बोझ के नीचे गर्दन पिचकने लगती है। बेटे की मौत ने आशा को निराशा में बदलकर कमर तोड़ दी थी। अब मैं भोला के सहारे ही जीता था, नहीं तो वास्तव में कभी का मर चुका था।

रात को मैं थकावट के कारण बिस्तर पर लेटते ही ऊँघने लगा। ज़रा देर के बाद माया ने मुझे दूध पीने के लिए आवाज़ दी। मैं बहू की सुघड़ता पर मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुआ और उसे सैकड़ों आशीर्वाद देते हुए मैंने कहा, "मुझ बूढ़े की इतनी परवाह न किया करो बेटा!

भोला अभी तक न सोया था। उसने एक छलाँग लगायी और मेरे पेट पर चढ़ गया। बोला, "बाबा जी, आप आज कहानी नहीं सुनायेंगे क्या?"

"नहीं बेटा," मैंने आकाश पर निकले हुए तारों को देखते हुए

कहा, "मैं आज बहुत थक गया हूँ, कल दोपहर को तुम्हें सुनाऊँगा।"

भोला ने रूठते हुए जवाब दिया, "मैं तुम्हारा भोला नहीं बाबा, मैं माता जी का भोला हूँ!"

भोला भी जानता था कि मैंने उसकी यह बात कभी सहन नहीं की। मैं हमेशा उससे यही सुनने का आदी था कि भोला बाबा जी का है, माता जी का नहीं। पर उस दिन हलों को कन्धे पर उठाकर छः मील तक ले जाने और पैदल ही वापस आने के कारण मैं बहुत थक गया था। शायद मैं इतना न थकता, यदि मेरा नया जूता एड़ी को न दबाता और इस कारण मेरे पाँव में टीसें न उठतीं। इस असाधारण थकावट के कारण मैंने भोला की वह बात भी सह ली। मैं आकाश पर तारों को देखने लगा। आकाश के दक्खिणी कोने में एक तारा मशाल के समान चमक रहा था। ध्यान से देखने पर वह मद्धिम-सा होने लगा........मैं ऊँघते-ऊँघते सो गया।

सुबह उठते ही मेरे दिल में खयाल आया कि भोला सोचता होगा कि कल रात बाबा ने मेरी बात किस तरह बरदाश्त की? मैं इस खयाल से काँप गया कि भोला के दिल में कहीं यह खयाल न आया हो कि अब बाबा मेरी परवाह नहीं करता। शायद यही कारण था कि सुबह के वक्त उसने मेरी गोद में आने से इनकार कर दिया और बोला, "मैं नहीं आऊँगा........तेरे पास, बाबा!"

"क्यों भोले?"

"भोला बाबा जी का नहीं........भोला माता जी का है।"

मैंने भोला को मिठाई के लालच से मना लिया और कुछ ही क्षणों में भोला बाबा जी का बन गया और मेरी गोद में आ गया और मेरे जिस्म से लिपटे हुए कम्बल को अपनी नन्हीं टाँगों के गिर्द लपेटने

लगा। माया हरि-हर स्तोत्र पढ़ रही थी। फिर उसने पाव भर मक्खन निकाला और उसे बर्तन में डालकर कुँएँ के साफ़ पानी से छाछ की खटास को धो डाला। अब माया ने अपने भाई के लिए एक सेर के लगभग मक्खन तैयार कर लिया था। मैं बहन-भाई की इस प्यार की भावना पर मन-ही-मन प्रसन्न हो रहा था। इतना प्रसन्न कि मेरी आँखों से आँसू टपक पड़े। मैंने दिल में कहा, स्त्री का हृदय प्रेम का एक सागर होता है। माँ-बाप, भाई-बहन, पति और पुत्र, सभी से वह बहुत ही प्यार करती है और इतना करने पर भी वह खत्म नहीं होता। एक दिल के होते हुए भी वह सब को अपना दिल दे देती है। भोला ने दोनों हाथ मेरे गालों की झुर्रियों पर रखे, माया की तरफ़ से चेहरे को हटाकर अपनी तरफ़ कर लिया और बोला, "बाबा, तुम्हें अपना वादा याद है न?"

"कौन सा वादा बेटे?"

"तुम्हें आज दोपहर को मुझे कहानी सुनानी है।"

"हाँ बेटा!" मैंने उसका मुँह चूमते हुए कहा।"

यह तो भोला ही जानता होगा कि उसने दोपहर के आने का कितना इन्तज़ार किया! भोला को इस बात का पता था कि बाबा जी के कहानी सुनाने का वक्त वही होता है, जब वह भोजन करके उस पलंग पर जा लेटते हैं, जिस पर वह बाबा जी या माता जी की मदद के बिना नहीं चढ़ सकता। अतएव समय से आध घंटा पहले ही उसने खाना निकलवाने का आग्रह शुरू कर दिया, मेरे खाने के लिए नहीं, बल्कि अपने कहानी सुनने के चाव से।

मैंने रोज़ की अपेक्षा आध घंटा पहले ही भोजन कर लिया। अभी अन्तिम कौर मैंने तोड़ा ही था कि पटवारी ने दरवाज़े पर दस्तक दी।

उसके हाथ में एक ज़मीन नापने वाली लोहे की जरीब थी। उसने कहा कि खानक़ाह वाले कुँएँ पर आपकी ज़मीन को नापने के लिए मुझे आज ही फ़ुरसत मिल सकती है, फिर नहीं।

दालान की ओर निगाह दौड़ायी तो मैंने देखा, भोला चारपाई के चारों तरफ़ घूमकर बिस्तर बिछा रहा था। बिस्तर बिछाने के बाद उसने एक बड़ा-सा तकिया भी एक तरफ़ रख दिया और खुद पायँते में पाँव अड़ाकर चारपाई पर चढ़ने की चेष्टा करने लगा। यद्यपि भोला का मुझे आग्रहपूर्वक जल्द रोटी खिलाना और बिस्तर बिछाकर मेरी खातिर करना, मुझे आराम पहुँचाने की चेष्टा करना अपने स्वार्थ के लिए था, फिर भी मुझे खयाल आया—आखिर माया का ही बेटा है न....ईश्वर करे, चिरंजीवी हो!

मैंने पटवारी से कहा कि तुम खानक़ाह वाले कुँएँ पर चलो, मैं तुम्हारे पीछे-पीछे आ जाऊँगा। जब भोला ने देखा कि मैं बाहर जाने के लिए तैयार हूँ तो उसका चेहरा इस तरह मद्धिम पड़ गया, जिस तरह पिछली रात को आकाश के एक कोने में मशाल की भाँति चमकता तारा लगातार देखते रहने के कारण मंद पड़ गया था।

माया ने कहा, "बाबा जी, इतनी भी क्या जल्दी है?....खानक़ाह वाला कुँआँ कहीं भागा तो नहीं जाता........आप कम-से-कम आराम तो कर लें।"

"ऊँ-हूँ!" मैंने धीरे से कहा, "पटवारी चला गया तो फिर यह काम एक महीने से इधर न हो सकेगा।"

माया चुप हो गयी। भोला मुँह बिसूरने लगा। उसकी आँखें भीग गयीं। उसने कहा, "बाबा, मेरी कहानी....मेरी कहानी...."

"भोले....मेरे बच्चे!" मैंने भोला को टालते हुए कहा, "दिन को

कहानी सुनाने से मुसाफ़िर रास्ता भूल जाते हैं।"

"रास्ता भूल जाते हैं!" भोला ने सोचते हुए कहा, "बाबा, तुम झूठ बोलते हो........मैं बाबा जी का भोला नहीं बनता।"

अब, जब कि मैं थका हुआ भी नहीं था और पन्द्रह-बीस मिनट आराम के लिए निकाल सकता था, भला भोला की इस बात को आसानी से कैसे सह लेता। मैंने अपने कन्धे से चादर उतार चारपाई के पायँते पर रखी और अपनी दबती हुई एड़ी को जूते की सख़्त कैद से मुक्ति दिलाते हुए पलंग पर लेट गया। भोला फिर अपने बाबा का बन गया। लेटते हुए मैंने भोला से कहा, "अब कोई मुसाफ़िर रास्ता खो बैठे तो तुम उसके ज़िम्मेदार हो।"

और मैंने दोपहर के समय भोला को सात शहज़ादों और सात शहज़ादियों की एक लम्बी कहानी सुनायी। कहानी में उनके विवाह को मैंने मामूली से अधिक आकर्षक ढंग से बयान किया। भोला हमेशा उस कहानी को पसन्द करता था, जिसके आखिर में शहज़ादे और शहज़ादी की शादी हो जाय। लेकिन मैंने उस दिन भोला के मुँह पर प्रसन्नता का कोई चिन्ह न देखा, बल्कि वह उदास-सी मुद्रा बनाये जैसे काँपता रहा।

*

इस विचार से कि पटवारी खानक़ाह वाले कुँएँ पर इन्तज़ार करते-करते थककर अपनी हल्की-हल्की झनकार पैदा करने वाली जरीब जेब में डालकर कहीं अपने गाँव का रुख़ न कर ले, मैं जल्दी-जल्दी मगर अपने नये जूते में दबती हुई एड़ी के कारण लँगड़ाता हुआ भागा। यद्यपि माया ने जूते में सरसों का तेल लगा दिया था, फिर भी वह नर्म बिलकुल न हुआ था।

शाम को जब मैं वापस आया तो मैंने भोला को ख़ुशी से दालान से सहन में और सहन से दालान में कूदते-फाँदते देखा। वह लकड़ी के एक डंडे को घोड़ा बनाकर उसे भगा रहा था और कह रहा था—

"चल मामा जी के देस....रे घोड़े, मामा जी के देस
मामा जी के देस, हाँ-हाँ, मामा जी के देस, घोड़े...."

जैसे ही मैंने ड्योढ़ी में क़दम रखा, भोला ने अपना गाना ख़त्म कर दिया और बोला, "बाबा, आज मामा जी आयेंगे न?"

"फिर क्या होगा भोले?" मैंने पूछा।

"मामा जी अगनबोट लायेंगे, मामा जी कुल्लू (कुत्ता) लायेंगे, मामा जी के सिर पर मक्की के भुट्टों का ढेर होगा न बाबा! हमारे यहाँ तो मक्की होती ही नहीं बाबा और तो और....ऐसी मिठाई लायेंगे, जो आपने सपने में भी न देखी होगी।"

मैं हैरान था और सोच रहा था कि किस ख़ूबी से 'सपने में भी न देखी होगी' का वाक्य सात शहज़ादों और सात शहज़ादियों वाली कहानी के बयान में से उसने याद रखा था।

"जीता रहे!" मैंने आशीर्वाद देते हुए कहा, "बहुत होनहार लड़का होगा और हमारे नाम को रोशन करेगा।"

शाम होते ही भोला दरवाज़े में जा बैठा ताकि मामा जी की शक्ल देखते ही अन्दर की तरफ़ दौड़े और पहले-पहल अपनी माता जी को और फिर मुझे अपने मामा जी के आने की ख़बर सुनाये।

दीयों को दियासलाई दिखायी गयी। जैसे-जैसे रात का अँधेरा गहरा होता जाता, दीयों की रोशनी ज़्यादा होती जाती। चिन्तित स्वर में माया ने कहा, "बाबा जी, भैया अभी तक नहीं आये!"

"किसी काम के कारण ठहर गये होंगे।"

"काम के कारण...."

"हो सकता है, कोई ज़रूरी काम आ पड़ा हो....राखी के रुपये डाक से भेज देंगे।"

"मगर राखी?"

"हाँ, राखी की कहो....उन्हें अब तक तो आ जाना चाहिए था।"

मैंने भोला को ज़बरदस्ती दरवाज़े की ड्योढ़ी पर से उठाया। भोला ने अपनी माता जी से भी अधिक चिन्तित स्वर में कहा, "बाबा जी.... मामा जी क्यों नहीं आये?"

माया ने भोला को गोद में उठाते हुए और प्यार करते हुए कहा, "शायद सुबह को आ जायें।....तेरे मामा जी....मेरे भोले।"

फिर भोला ने अपनी कोमल बाँहों को अपनी माँ के गले में डालते हुए कहा, "मेरे मामा जी तुम्हारे क्या होते हैं?"

"जो तुम नन्हीं के हो।"

"भाई?"

"तुम जानो...."

"और बंसी (भोला का दोस्त) के क्या होते हैं?"

"कुछ भी नहीं...."

"भाई भी नहीं?"

"नहीं।"

और भोला इस अजीब बात को सोचता हुआ सो गया। जब मैं अपने बिस्तर पर लेटा तो फिर वह मशाल के समान चमकता हुआ तारा आकाश के एक कोने में मेरे घूरने के कारण मन्द पड़ता हुआ दिखायी दिया। मुझे फिर भोला का चेहरा याद आ गया, जो मेरे खानक़ाह वाले कुँएँ को जाने के लिए तैयार होने के कारण यों ही मन्द पड़ गया

था। कितना शौक है भोला को कहानियाँ सुनने का ! वह अपनी माँ को स्तोत्र भी पढ़ने नहीं देता। इतना-सा बच्चा भला गीता को क्या समझे, मगर सिर्फ़ इस कारण कि उसके अध्याय का माहात्म्य एक मनोरंजक कहानी होता है, वह बड़े धैर्य से अध्याय के समाप्त होने और माहात्म्य के आरम्भ होने का इन्तज़ार किया करता है।

'माया का भाई अभी तक नहीं आया। शायद न आये' मैंने मन में कहा, 'उसे अपनी बहन का प्यार से जमा किया हुआ मक्खन खाने के लिए तो आ जाना चाहिए था।' मैं तारों की ओर देखते-देखते ऊँघने लगा। एकाएक माया की आवाज़ से मेरी नींद खुल गयी।

वह दूध का कटोरा लिये खड़ी थी।

"मैंने कई बार कहा है, तुम मेरे लिए इतनी तकलीफ़ न किया करो।" मैंने कहा।

दूध पीने के बाद स्नेहावेश से मेरे आँसू निकल आये। अत्यधिक प्रसन्न होकर मैं माया को यही आशीर्वाद दे सकता था ना कि वह सुहागवती रहे। कुछ ऐसा ही मैंने कहना चाहा। लेकिन इसका खयाल आने से कि उसका सुहाग तो वर्ष भर पहले लुट गया था, मैंने कुछ-न-कुछ कहने के उद्देश्य से अपने आवेग को दबाते हुए कहा "बेटी! तुम्हें इस सेवा का फल ज़रूर मिलेगा !"

फिर मेरे बग़ल में बिछी चारपाई पर से भोला नन्हीं को, जो कि उसके साथ ही सो रही थी, परे ढकेलते हुए और आँखें मलते हुए उठा। उठते ही उसने कहा, "बाबा, मामा जी अभी तक क्यों नहीं आये ?"

"आ जायेंगे बेटा, सो जाओ। वह सुबह-सवेरे आ जायेंगे।"

अपने बेटे को अपने मामा के लिए इतना बेताब देखकर माया भी

कुछ बेताब-सी हो गयी, ठीक उस तरह, जिस तरह एक दीप से दूसरा दीप जल जाता है। कुछ देर के बाद वह भोला को लिटाकर थपकने लगी।

माया की आँखों में भी नींद आने लगी। वैसे भी जवानी में नींद का ज़ोर होता है और फिर दिन भर काम-काज करके थक जाने के कारण माया गहरी नींद सोती थी। मेरी नींद तो आम बूढ़ों की-सी नींद थी। कभी एक-आध घंटे तक सो लेता, फिर दो घंटे जागता रहता। फिर कुछ देर ऊँघने लग जाता और बाक़ी रात तारे गिन-गिनकर काट देता। मैंने माया को सो जाने के लिए कहा और भोला को अपने पास लिटा लिया।

"बत्ती जलती रहने दो, सिर्फ़ धीमी कर दो....मेले के कारण बहुत-से चोर-चकार इधर-उधर घूम रहे हैं।" मैंने सोयी हुई माया से कहा।

सबसे बड़ी बात यह थी कि इस बार मेले पर जो लोग आये थे, उनमें ऐसे भी थे जो कि नन्हें-नन्हें बच्चों को भगा ले जाते थे। पड़ोस के एक गाँव में दो-एक ऐसी वारदातें हुई थीं और इसीलिए मैंने भोला को अपने पास लिटा लिया था। मैंने देखा, भोला जाग रहा था। इसके बाद मेरी आँख लग गयी।

थोड़ी देर के बाद जब मेरी आँख खुली तो मैंने बत्ती को दीवार पर न देखा। घबराकर हाथ पसारा तो मैंने देखा कि भोला भी बिस्तर पर न था। मैंने अन्धों की तरह दीवारों-खम्भों से टकराते और ठोकरें खाते तमाम चारपाइयों पर देखा। माया को भी जगाया। घर का कोना-कोना छाना....भोला कहीं न था!

*

"माया....हम लुट गये !" मैंने अपना सिर पीटते हुए कहा।

माया माँ थी। उसका कलेजा जैसे फटा, यह कोई उसी से पूछे। अपना सुहाग लुटने पर उसने इतने बाल न नोचे थे, जितने कि उस वक्त नोचे। उसका दिल बैठा जा रहा था और वह पागलों की तरह चीखें मार रही थी। पास-पड़ोस की स्त्रियाँ शोर सुनकर जमा हो गयीं और भोला के खो जाने की खबर सुनकर रोने-पीटने लगीं।

मैं औरतों से भी ज़्यादा रो-पीट रहा था। आज मैंने एक मदारी को अपने घर के अन्दर घूरते भी देखा था। लेकिन मैंने परवाह नहीं की थी। आह! वह समय कहाँ से हाथ आये? मैंने भगवान से विनती की, मनौती मानी कि भोला मिल जाय। वही अँधेरे घर का उजाला था, उसी के दम से मैं और माया जीते थे। उसी के आसरे से हम उड़े फिरते थे, वही हमारी आँखों की ज्योति, वही हमारे शरीर का बल था। उसके बिना हम कुछ नहीं थे।

मैंने घूमकर देखा, माया बेहोश हो गयी थी। उसके हाथ अन्दर की तरफ़ मुड़ गये थे। नसें तनी हुई और आँखें पथरायी हुई थीं और स्त्रियाँ उसकी नाक बन्द करके एक चमचे से उसके दाँत खोलने की चेष्टा कर रही थीं।

मैं सच कहता हूँ, एक क्षण के लिए मैं भोला को भी भूल गया। मेरे पाँव-तले की धरती खिसक गयी। एक साथ घर के दो-दो प्राणी जब देखते-देखते हाथों से निकल जायें तो उस समय दिल का क्या हाल होता है। मैंने काँपते हुए ओठों से ईश्वर को बुरा-भला कहा कि इन दुखों के देखने से पहले उसने मेरी ही जान क्यों न ले ली। आह! लेकिन जिसका समय आता है, उसके सिवा किसी और का बाल तक बाँका नहीं होता।

मैं भी माया ही की तरह गिर पड़ने वाला था कि माया होश में आ गयी। मुझे पहले से कुछ सहारा मिला। मैंने दिल में कहा—मैं ही माया को सहारा दे सकता हूँ और यदि मैं खुद इस तरह हौसला छोड़ दूँ तो माया किसी तरह नहीं बच सकती। मैंने हवास जमा करते हुए कहा, "माया बेटी!....देखो, मुझे यों बर्बाद न करो!....हौसला करो! बच्चों को भगाया जाता है, लेकिन आखिर वे मिल भी जाते हैं। मदारी बच्चों को मारने के लिए नहीं ले जाते। पालकर बड़ा करके किसी काम में लाने के लिए ले जाते हैं....भोला मिल जायगा।"

माँ के लिए ये शब्द निरर्थक थे। मुझे भी अपने इस तरह सब्र करने पर ध्यान आया मानो मैं इस कारण चुप हो गया हूँ कि मुझे माया की अपेक्षा भोला से बहुत कम प्यार है। लेकिन नहीं, मैंने मन में कहा, आदमी को ज़रूर कुछ हौसला दिखाना चाहिए।

उस समय आधी रात इधर थी और आधी उधर, जब हमारा पड़ोसी इस दुर्घटना का समाचार थाने में पहुँचाने के लिए, जो गाँव से दस कोस दूर शहर में था, रवाना हुआ।

बाकी हम सब हाथ मलते हुए सुबह का इन्तज़ार करने लगे, ताकि दिन निकलने पर कुछ सुझायी दे।

सहसा दरवाज़ा खुला और हमने भोला के मामा को अन्दर आते देखा। उसकी गोद में भोला था। उसके सिर पर मिठाई की टोकरी और एक हाथ में बत्ती थी। हमें तो जैसे सारी दुनिया की दौलत मिल गयी। माया ने भाई को पानी पूछा, न कुशल-समाचार और उसकी गोद से भोला को छीनकर उसे चूमने लगी। तमाम अड़ोस-पड़ोस ने बधाई दी।

भोला के मामा ने कहा, "मुझे किसी काम के कारण देर हो गयी

थी। देर से चलने पर रात के अँधेरे में अपना रास्ता खो बैठा था। एकाएक मुझे एक तरफ़ से रोशनी आती दिखायी पड़ी। मैं उसकी तरफ़ बढ़ा। उस घोर अँधियारी में परसपुर से आने वाली सड़क पर भोला को बत्ती पकड़े और काँटों में उलझे देखकर मैं हैरान रह गया। मैंने इसके उस समय वहाँ होने का कारण पूछा तो इसने जवाब दिया—
"बाबा जी ने आज मुझे दोपहर के समय कहानी सुनायी थी और कहा था कि दिन के समय कहानी सुनाने से मुसाफ़िर रास्ता भूल जाते हैं। तुम देर तक न आये तो मैंने यही जाना कि तुम रास्ता भूल गये होगे। और बाबा ने कहा था कि अगर कोई मुसाफ़िर रास्ता भूल गया तो तुम ज़िम्मेदार होगे......."

साथी

ऊपरी नज़र से तो यही दिखायी देता है कि केन्द्रीय अस्पताल के उन लोगों को, जिनकी निगरानी में बहुत से निराश और आशावान रोगी रहते हैं, समानता पर बहुत विश्वास है। वे हर छोटे-बड़े को जाति या धर्म के किसी भेद-भाव के बिना तीस-तीस गिरह के खुले पायँचों का पाजामा और खुले-खुले बाजुओं वाली क़मीज़ पहना देते हैं जिनसे एक विशेष प्रकार की सोंधी-सोंधी अपरिचित-सी गंध आती है। क़मीज़ घुटने से भी छः गिरह ऊँची होती है। प्रायः इतनी ऊँची कि इज़ार बंद भी दिखायी देने लगता है। केन्द्रीय अस्पताल और केन्द्रीय जेल के वासियों के कपड़ों में अंतर ही क्या है? यही न कि अस्पताल के रहने वालों के कपड़े कुछ मटियाली रंगत के, किन्तु उजले होते हैं, लेकिन जेल में बसने वाले अभागों को शायद ही कभी धोबी का मुँह देखना नसीब होता है।

अस्पताल में इन तीस-तीस गिरह के खुले पायँचों और ढीली-ढाली क़मीज़ों में ढके हुए बदन भी एक ही बनावट के होते हैं। शारीरिक दृष्टि से कोई कुछ मोटा या बहुत दुबला हो तो हो, लेकिन मुँह पर एक

ही सा पीलापन छाया रहता है। एक ही भय या आशंका होती है जो हर एक के दिल में बेचैनी पैदा किया करती है :

"क्या हम मौत की इस खोह से स्वस्थ और जीवित निकल जायँगे?"

—और यही सोच इन ग़रीबों पर रात की नींद हराम कर देती है।

सूरज डूबने को है। अस्पताल के अहाते की टूटी-सी दीवार पर ममोले की मादा अपने अंडों के खोल बनाने के लिए चूना कुरेदने आती है और उसी वक्त उन्हीं तीस-तीस गिरह के खुले पायँचों और ढीली-ढाली क़मीज़ों में बे-रंग-रूप चेहरे लिये हुए रोगी मनाही होने के बावजूद अस्पताल की टूटी-सी दीवार पर स्वास्थ्य का दर्शन करने आते हैं और घंटों हसरत के साथ उस गतिमान जीवन को देखा करते हैं।

अस्पताल के सामने एक बिसाती की दुकान पर कुछ युवा लड़कियों का जमघट है। उनकी रंग-बिरंगी साड़ियों के पल्ले स्वच्छंद रूप से उनके सिरों पर से उड़ रहे हैं। कोई 'हिमानी' की खरीदार है, कोई 'ज़ीनत' की और कोई 'कोटी' की....दुकान के ऊपर छत पर प्रोफ़ेसर की पत्नी चिक़ के पीछे अपने ओठों पर से लिपस्टिक की उड़ी हुई लाली को ठीक करती हुई धुँधली-धुँधली-सी दिखायी देती है।

मेरा साथी अज़ीमुद्दीन खेड़ा मुग़ली—खेड़ा मुग़ल का रहने वाला—है। मुग़ली प्रोफ़ेसर की सुन्दर पत्नी को देखकर क्षण भर के लिए अपने कारबंकल बल्कि अपने अस्तित्व को भूलकर कहता है :

"क्या इसके ओठों से लाली उड़ गयी थी?"

"देखते नहीं....अभी प्रोफ़ेसर के कमरे से बाहर आ रही है.... और......."

"हिश्श....हिश"—और हमारा दूसरा साथी अश्चरज लाल हमें

फिर मौत की दुनिया में ले आता है ।

सड़क पर एक हरी ओपल कार पूरे ज़ोर से हॉर्न बजाती हुई गुज़रती है। उसमें बैठे हुए दो बूढ़ों की निगाहें ताँगे में जाती हुई दुल्हन की लाल चूड़ियों पर जमी हैं और दुल्हन की निगाहें सड़क के किनारे पर पड़े हुए कूड़े करकट के ढेर पर जम रही हैं।

कुछ आवारा छोकरे अपने खास बेपरवाही के ढंग से टप्पे गाते हुए सिनेमा की तरफ़ लपके जा रहे हैं और उनसे कुछ हटकर सम्हल-सम्हलकर चलते हुए एक साधु महात्मा हैं जिनका एक-एक क़दम शांति की खोज में उठता है—वह शांति जो कहीं नहीं मिलती—अस्पताल के फाटक पर दो खोंचे वाले गुत्थम-गुत्था हो रहे हैं। वे दोनों एक ही समय दरवाज़े से सटाकर अपना-अपना खोंचा रखना चाहते हैं.... कमज़ोर ने पीछे हटकर तगड़े खोंचे वाले पर एक पत्थर फेंका है....

"अरे ओ सब्र और संतोष से वंचित लोगो! सेहत की इस थोड़ी-सी खुशी से, जो तुम्हें उधार दी गयी है, क्यों लाभ नहीं उठाते ? अरे देखते नहीं हम तुम्हारे भाई कितने दुखी हैं।"

"हाँ भाई!—यह सब तन्दुरुस्ती की बातें हैं," अश्चरज लाल कहता है।

"शायद हम भी तन्दुरुस्त होकर ऐसा ही करें!"

फिर खेड़ा मुग़ली उस क़ब्रिस्तान की ओर, जो अस्पताल के पास ही है, देखकर चौंक उठता है और कहता है :

"कल हमारे ही कमरे में....सातवीं चारपाई....उफ़! मेरा सिर घूम रहा है। मुझे ऐसा दिखायी देता है जैसे वह क़ब्रिस्तान हमारी तरफ़ आ रहा है...."

"हिश....श्श...." मैं उसे खामोश हो जाने के लिए कहता हूँ,

"ऐसी बात न कहो भाई।"

लेकिन यह मुग़ली के बस की बात नहीं। वह ज़ोर से छींकता है। कारबंकल के साथ उसे इनफ्लुएंज़ा ने भी आ दबाया है। उसके बिलकुल पीले, बे-रौनक़ चेहरे पर सुर्ख़ नोकदार लुआब से भरी हुई नाक एक अजीब घृणास्पद दृश्य उपस्थित कर रही है।

लेकिन फिर भी हमें स्वास्थ्य की दिलचस्प मूर्खताएँ अपने में लीन कर लेती हैं। यहाँ तक कि फिर मुग़ली एक खौफ़नाक ढंग से छींकता है और बहुत से तरल चिपचिपे कण धूप की किरणों में उड़ने लगते हैं। छींकने से मुग़ली की रीढ़ की हड्डी पर ज़ोर पड़ता है और वह घोर पीड़ा के कारण कारबंकल पर हाथ रख लेता है। ज्यों-ज्यों दर्द कम होता है, उसकी मुड़ी हुई आँखें और हमारे रुके हुए साँस धीरे-धीरे वापस आते हैं। कुछ दम लेने के बाद मुग़ली कहता है :

"भाई....क्या हम इन चूड़ वालियों, इन खोंचे वालों....मज़दूरों के बराबर चल सकेंगे?"

"तुम जी थोड़ा न करो मुग़ली। मैं....मेरा ख़याल है कि तुम बिलकुल तन्दुरुस्त हो जाओगे। अश्चरज लाल पहले ही स्वस्थ हो रहा है। लेकिन मैं इन लोगों के साथ-साथ कभी नहीं चल सकूँगा। देखते नहीं मेरी टाँग को? एकदम गल ही तो गयी है....काश मैं इस भिखारी के साथ-साथ चल सकूँ मुग़ली....मुझे इस बात की परवाह नहीं चाहे उसकी तरह मेरी भी एक टाँग काट ली जायँ....मैं केवल यह चाहता हूँ कि स्वस्थ होकर इस अहाते की दीवार को फाँद सकूँ........"

और यों उन स्वस्थ लोगों के साथ-साथ चलने की एक प्रबल आकांक्षा को पालते हुए हम अपने-अपने कमरों का रुख़ करते हैं और ममोले की मादा, जो कि मिट्टी के एक ढेर पर बैठी हमारे चले जाने

का बड़ी बेसब्री से इन्तज़ार कर रही थी, फिर उसी टूटी-सी दीवार पर अपने अंडों के खोल बनाने के लिए चूना कुरेदने आती है।

*

जब पत्ती उड़ने के लिए पर तोलता है और पंजे का पिछला हिस्सा ज़मीन पर से उठाकर बैठने और उड़ने के बीच की स्थिति में होता है तो उसे फ़ारसी में 'सूरते-नाहिज़' कहते हैं। बीमार के लिए 'सूरते-नाहिज़' में बैठना वर्जित है और अपशकुन समझा जाता है। हाँ, जो इस दुनिया में से एड़ियाँ उठाकर मौत की फ़िज़ा में उड़ना चाहे, वह रोगी चाहे निर्भय होकर 'सूरते-नाहिज़' में बैठे।

खेड़ा मुग़ली इसी तरह बैठा था। मैंने उसे यों बैठने से मना किया और हमें दरवाज़े से 'गर्टी' आती दिखायी दी।

गर्टी हमारी नर्स थी। उसका पूरा नाम मिस गरट्रूड बेन्सन था, मगर हममें से कुछ पुराने रोगी उससे इतने परिचित हो गये थे कि उसे उसके ईसाई नाम से बुलाने में ज़रा भी नहीं झिझकते थे। और यह छोटी-सी सुविधा गर्टी ने हमें खुद दे रखी थी। वह मुझ पर साधारणतः और खेड़ा मुग़ली पर विशेषतया कृपालु थी। मुग़ली की उजड्ड गँवारू हरकतें गर्टी के लिए मनोरंजक थीं। लाल कम्बल को एक ओर सरकाते हुए वह कई बार मुग़ली के पास बैठ जाती और उसके जेहलमी काट के बालों में अपनी सुन्दर उँगलियाँ फेरा करती।

जितना वह मुग़ली को प्यार करती, उतना ही उसे वहम हो जाता कि वह खतरे में है। वह कहता :

"वह मेरा दिल रखने के लिए ही मुझसे प्यार करती है....रोगी को हर मुमकिन तरीक़े से खुश रखना उनके पेशे की ख़ासियत है।

और फिर गर्टी में दया भी तो बहुत है। वह जानती है कि मेरे दिन क़रीब हैं और फिर इस चेहरे पर रूखी-फीकी मुस्कान भी न खेलेगी।"

"गर्टी....गर्टी...." हम दोनों ने पुकारा।

अस्पताल में कुछ रोगी ऐसे भी थे जिन्हें खाना घर से मँगवा लेने की इजाज़त थी। हम उन भाग्यशालियों में नहीं थे। हमें अस्पताल की ओर से बीमारों की खास खुराक मिलती थी....वे सौभाग्यशाली जब खाना खाकर चीनी के बर्तन दूर रख देते थे और उनमें शोरबे का पीलापन और घी की चिकनाहट दिखायी देती तो हमारा दिल बग़ावत के लिए हमें उकसाता।

गर्टी के हाथ से हमने खाना छीना, वही रोज़ का खाना। अगर भूख न होती तो इस खाने की हमें रत्ती भर इच्छा नहीं थी। बहुत से दूध में थोड़ा-सा साबूदाना तैरता हुआ यों दिखायी देता जैसे बरसात के पानी में मेंढक के सैकड़ों अंडे छोटे-छोटे काले धब्बों की तरह एक झिल्ली में लिपटे हुए तैरते दिखायी देते हैं।

हमने अकाल पीड़ितों के ढंग से एक ही रिकाबी में खाना शुरू कर दिया और गर्टी के कहने की बिलकुल परवाह न की। रोगियों की तीमारदारी के लिए आये हुए लोग हमें घूरने लगे।

"एक सिख और एक मुसलमान....साथ-साथ नहीं, एक ही रकाबी में!"

—वे क्या जानें कि अस्पताल की चारदीवारी के बाहर सब कुछ है, मगर यहाँ न कोई हिन्दू है, न मुसलमान, न सिख है, न ईसाई, न गौड़ ब्राह्मण, न अछूत....यहाँ एक ही धर्म के लोग हैं जिन्हें रोगी कहा जाता है और जिनकी मुक्ति केवल स्वास्थ्य-लाभ है, जिसकी प्राप्ति के लिए वे अपनी तमाम इच्छाएँ और रही-सही शक्ति खर्च कर डालते हैं।

उस दिन शाम को हमने फिर दीवार पर बैठकर स्वस्थ लोगों की मनोरंजक मूर्खताओं को देखा। वही हलचल, वही असन्तोष....सामने एक डबल फ्लाई रावटी खेमे के अन्दर कुछ लोग दावत उड़ा रहे थे। एक कोने में कुछ बोतलें खुली पड़ी थीं। कभी-कभी सोडे की बोतल के खुलने से 'बज़' की आवाज़ आती....वे लोग हँसते थे, चिल्लाते थे, केले और संगतरों के छिलके एक दूसरे पर फेंककर निशानेबाज़ी का अभ्यास करते थे। और इस दावत की तमाम रौनक़ क़ब्रिस्तान की बे-रौनक़ पृष्ठ-भूमि के कारण और भी अधिक रौनक़ भरी लग रही थी। बेशक! ज़िन्दगी की बहुत-सी खुशियाँ मौत की पृष्ठ-भूमि की आभारी हैं, जैसे सितारों की चमक रात की अँधियारी और आकाश के नीलेपन की आभारी है।

अचानक खेड़ा मुग़ली ने 'सूरते-नाहिज़' से उठकर आवेग से काँपता हुआ हाथ मेरे कंधे पर रखा और संदिग्ध स्वर में बोला :

"भाई....क्या हम इन लोगों के कन्धे-से-कन्धा भिड़ाकर चल भी सकेंगे?"

मैं कुछ देर निस्तब्ध खड़ा आसमान पर उड़ती हुई चंडूलों को देखता रहा। फिर मैंने मुग़ली से लिपटते हुए कहा, "हाँ....मुग़ली, क्यों नहीं? लेकिन तुम इस तरह मत बैठा करो।"

फिर कुछ रुक-रुककर मैंने कहा :

"कल मेरी टाँग का ऑपरेशन है....गर्टी ने मुझे बताया था। शायद आज यह मेरी और तुम्हारी आखिरी मुलाक़ात हो। तुम इन लोगों के साथ-साथ चल सकोगे....अश्चरज भी ठीक हो जायगा....लेकिन मैं...."

और हम दोनों चुपचाप भीगी आँखों से एक दूसरे की ओर देखते रहे।

फिर खेड़ा मुग़ली ने एक भयानक छींक मारी।

दूसरे दिन मेरी टाँग काट डाली गयी।

पाँचवें दिन मेरी आँख खुली। मैं हिल-जुल नहीं सकता था। मैंने देखा, खेड़ा मुग़ली मेरे पायँते बैठा हुआ हल्के-हल्के कुछ जाप-सा कर रहा था। मेरी आँखें खुलते हुए देखकर वह मुस्कराने लगा। मैंने अपने बदन में कुछ ताक़त महसूस करते हुए उससे लिपटने के लिए काँपते हाथ फैला दिये। मैं अपनी टाँग के दुख जाने से बिलबिला उठा और मुग़ली अपने कारबंकल पर ज़ोर पड़ने से!

*

मुग़ली का कारबंकल अच्छा हो रहा था। इसी अर्से में मैं ठीक होकर अस्पताल से चला गया। मेरी अनुपस्थिति में मेरी जीवन-संगिनी का देहान्त हो गया था। अब एक शीशम की सख़्त-सी दोहरी लाठी मेरी जीवन-संगिनी बन चुकी थी। पहली और इस जीवन-संगिनी में अंतर केवल इतना था कि वह मुझे अपनी बातूनी तबीयत से परेशान रखती थी। और यह अपने मौन से और भी परेशान।

इसी लाठी को बग़ल में दबाये मैं धीरे-धीरे काम पर जाता। मुझे अपनी टाँग के काटे जाने का बहुत दुख नहीं था। मैं इस बात पर खुश था कि तन्दुरुस्त तो हो गया और अपनी इच्छा के अनुसार अस्पताल के अहाते के बाहर भी निकल आया।

एक बार मैं अस्पताल के पास से गुज़रा तो मेरी रूह तक काँप गयी। उस वक्त मेरे साथी और बाद में आये हुए रोगी हसरत भरी निगाहों से हमारी दिलचस्प हिमाक़तें देखने में मग्न थे....और अहाते की टूटी-सी दीवार पर तीन ममोले अपनी तीन काट की दुमों को

थरथरा रहे थे। मेरे खयाल में बड़ी चिड़िया छोटे ममोलों की माँ थी जो हमारी बीमारी के दिनों में इसी दीवार पर अपने अंडों के खोल बनाने के लिए चूना कुरेदने आया करती थी।

उस वक्त मेरे सिवा उन रोगियों के कष्ट को कौन जान सकता था। मैंने उन लोगों की मुसीबत पर कुछ आँसू बहाये....मुझे सामने बिसाती की दुकान पर कुछ नौजवान लड़कियों का जमघट दिखायी दिया। उनकी साड़ियों के पल्ले उसी तरह स्वच्छंदता से उड़ रहे थे....और छत पर चिक के पीछे प्रोफ़ेसर की बीवी अपनी साड़ी की सलवटों को ठीक करती हुई धुँधली-धुँधली-सी दिखायी दे रही थी। मैं एक अस्पष्ट भाव से प्रेरित होकर बिसाती की दुकान की ओर बढ़ा और वहाँ से कुछ रंगदार रेशमी फीते लाठी को सजाने के लिए खरीदे और कुछ असन्तुष्ट, खोया-खोया और लड़खड़ाता हुआ वापस आया।

एक दिन मैं अस्पताल के अन्दर गया तो देखा मुग़ली का कारबंकल बहुत कुछ ठीक हो चुका है। हाँ! अश्चरज की हालत बड़ी नाज़ुक थी और बयान के बाहर थी।....इसके बाद मुझे अपने एक अफ़सर के साथ कुछ हफ्तों के लिए बाहर जाना पड़ा।

मेरे दिल में कई बार खयाल आया कि खेड़ा मुग़ली मुझे कितना कोसता होगा। वह तो पहले ही कहा करता था कि इंसान खुद सुखी होकर अपने पिछले दुख और दूसरों की तकलीफ़ों को जान-बूझकर भूल जाया करता है। यद्यपि यह बात ठीक थी, किन्तु कुछ मजबूरियों के कारण मुझ पर लागू न होती थी।

वापस आने पर अवकाश के एक दिन मैं फिर अस्पताल गया।

गर्टी ने एक रूखी-फीकी मुस्कान से मेरा स्वागत किया। मैं डर से सहम गया। उसने मुझे बताया कि अश्चरज लाल दो दिन हुए

बिलकुल ठीक होकर अजमेर चला गया है। मगर गर्टी ने खेड़ा मुग़ली के बारे में कुछ न कहा।

मैं सावधानी से पग बढ़ाता हुआ जनरल वार्ड की ओर गया। बरामदे के नीचे अस्पताल के नौकर कुछ स्त्रियों और बच्चों को ऊँची आवाज़ से रोने से मना कर रहे थे। इन स्त्रियों में एक खेड़ा मुग़ली की बूढ़ी और अधमरी-सी माँ भी थी जो अपने बेटे से हमेशा को बिछुड़कर गगन-भेदी चीखें मार रही थी....फिर उसकी बीवी....बच्चे....

बरामदे की एक ओर मुग़ली मौत की मीठी नींद सो रहा था। उसे यों देखकर मेरी बग़ल में से लाठी गिर पड़ी....मैं रो भी न सका।

लोगों ने चुपके से मुग़ली की लाश को उठाया, उसे कन्धों के बराबर किया और कलमा-ए-शहादत पढ़ते हुए ले चले।

छोकरी की लूट

बचपन की बहुत-सी बातों के अतिरिक्त परसादी राम को छोकरी की लूट की रस्म अच्छी तरह याद थी।

दो ब्याहे हुए भाइयों का सारी उम्र एक ही घर में रहना कितना मुश्किल होता है, विशेषकर जब उनमें से एक तो सुबह-शाम शक्कर में घी मिलाकर खाना पसन्द करे और दूसरा अपनी सुन्दर पत्नी के सामने ऐसी छोटी-छोटी बातों के लिए कानों का कच्चा बने। लेकिन मुहल्ला शहसवानी टोला में परसादी के पिता चम्बाराम और ताया ठुंडीराम जगतगुरु अपने बाप-दादा के मकान में इकट्ठे रहते आये थे। यह इकट्ठे रहने की वजह ही तो थी कि चम्बाराम का कारबार अच्छा चलता था और ठुंडीराम को नौकरी से अच्छी-खासी आमदनी होती थी। औरतों की गोदियाँ हरी थीं और आँगन में बरकत थी और वहाँ आम के एक बड़े पेड़ के साथ खिरनी का एक खूबसूरत-सा पौधा उग रहा था, जिसके पत्तों से खिचड़ी होती हुई ककरौंदे की बेल बाज़ार में छदामी की दुकान तक पहुँच गयी थी और आस-पास के गाँव से आये हुए लोगों को ठंडी मीठी छाँव देती थी।

भगवान की करनी, परसादी के जन्म के डेड़-दो वर्ष बाद चम्बाराम काल-बस हो गये। मगर जगतगुरु ने भावज को बेटी करके जाना और परसादी को अपना बेटा कहकर पहचाना। और ताई अम्मा भी तो यों बुरी न थीं। असाढ़ी और सावनी के दो मौक़ों के सिवा, जब कि बटवारा घर में आता, वे परसादी की अम्मा के साथ हँसी-ख़ुशी रहतीं। कभी तो यह गुमान होने लगता जैसे दोनों माँ-जाई बहनें हैं। इसी एकता के कारण आँगन की बरकत ज्यों-की-त्यों रही। आँगन में चार-पाँच बरस से लेकर बीस-इक्कीस बरस तक की लड़कियाँ सहेले, बधाई, बिछोड़े और देस-देस के गीत गातीं, चर्ख़े काततीं और सूत की बड़ी-बड़ी अंटियाँ मेंढ़ियों की तरह गूँथकर बुनाई के लिए जुलाहे के घर भेज देतीं। कभी-कभी खुले मौसम में उनका रतजगा होता तो आँगन में ख़ूब रौनक़ हो जाती। उस वक्त तो परसादी-से छोकरे को पिटारियों में से गुलगुले, मेवे, बादाम, बर्फ़ी आदि खाने के लिए मिल जाती।

परसादी की बहन रतनी—उसकी ताई की लड़की—उम्र में परसादी से ग्यारह-बारह बरस बड़ी थी। रतनी से आयु के इस अंतर की परसादी को बहुत शिकायत थी और शिकायत ठीक भी थी। सच पूछो तो रतनी एक पल भी उसके साथ न खेलती थी। अलबत्ता सर्दियों में ज़रूर उसके साथ सोती थी और जब तक वह परसादी के साथ सोकर उसके बिस्तर को गर्म न कर देती, परसादी मचलता रहता :

"रतनी आओ....आओ न रतनी....देखो तो मारे सर्दी के सुन्न हुआ जाता हूँ।"

रतनी बहुत तंग होती तो कहती, "सो जा, सो जा मुंडीकाटे....मैं कोई अंगीठी थोड़े ही हूँ।"

यह तो हुई न रात की बात। दिन को रतनी किसी अपनी ही धुन

में मगन रहती । हौले-हौले गाती...."मीठे लागे वाके बोल...."

आखिर कोई तो परसादी के साथ खेलने वाला चाहिए था । जब वह बिलकुल अकेला होता तो उसे कुछ-कुछ समझ आती कि काल-बस होकर स्वर्ग चले जाने का क्या अर्थ है । वहाँ लोग अकेले रहते हैं, लेकिन उन्हें कोई भी तकलीफ़ नहीं होती । जब वह सोच-सोचकर थक जाता तो दौड़ा-दौड़ा माता रानी के जौहड़ पर पहुँच जाता, सारे कपड़े उतारकर किनारे पर रख देता और बहुत-सी चिकनी मिट्टी निकालता और घर जाकर रतनी को देता ताकि वह उसे एक मुन्ना बना दे, बहुत खूबसूरत मिट्टी का मुन्ना । फिर वह तमाम दिन मुन्ने के साथ खेलता रहेगा और उसे तंग करना छोड़ देगा । रतनी कहती, "देखो परसू, मैं तब बनाऊँगी तुम्हारे लिए मुन्ना, अगर तुम कोठा फाँदकर मल्लू कन्हैया के पास जाओ और उसे कहो कि आज शाम वह रतनी बहन से ज़रूर मिलें ।"

मल्लू कन्हैया के मकान की ढालुवाँ-सी छत को रेंगकर चढ़ना कोई खेल थोड़े ही था । रतनी खुद घोड़ी बनकर पीठ की ओट देती तब कहीं परसादी मुँडेर तक पहुँचता । लाख सहारा लेने पर भी उसकी कुहनियाँ और घुटने छिल जाते और इतनी मेहनत के बाद जब परसादी लौटता तो देखता कि रतनी की बच्ची ने कोई मुन्ना-चुन्ना नहीं बनाया और फुलकारी की ओढ़नी को बूढ़ी जमादारनी की भाँति मुँह पर खिसकाये वही फ़जूल और बेमतलब-सा गाना गुनगुना रही है....'मीठे लागे वाके बोल....'

उस समय परसादी की बहुत बुरी हालत होती । वह चाहता कि वह भी काल-बस हो जाय । मगर काल-बस होने के पहले बहुत ही फुँककर बुखार आता है, हड्डियाँ कड़कती हैं, ऐसा दिखायी देता है जैसे

कोई भयंकर बड़ा-सा काले रंग का भैंसा सींग मारने को दौड़ा आ रहा है, आदमी डर-डरकर चीखें मारता और काँपता है। परसादी को भूमिका के तौर पर यह मंजूर न था। बैठे-बिठाये काल-बस हो जाना किसी भाग्यवान ही को मिलता है। उस समय वह रोते हुए माँ के पास जाता और कहता :

"चन्दू के घर मुन्ना होता है....बीरू के घर मुन्ना हुआ है माँ.... हमारे घर क्यों नहीं होता मुन्ना?....तुम ऐसा जतन करो माँ कि हमारे घर भी एक मुन्ना तो हो जाये।"

परसादी की माँ एक बहुत गहरी और ठंडी साँस लेती और छींकती हुई लोहे के एक बड़े हावन दस्ते में लाल मिर्चें कूटती जाती और न जाने उसके जी में क्या आता कि परसादी की तरह बिलख-बिलखकर रोने लगती। फिर सहसा सब रोना-धोना छोड़कर अरवी को छीलने के लिए तेज़ी से मोंढ़े पर रगड़ना शुरू कर देती और जब परसादी बिलकुल ज़िद ही किये जाता तो वह कहती :

"परसू बेटा! यों नहीं कहा करते अच्छे लड़के....तुम्हारे पिता लाया करते थे मुन्ना....वे अब रूठ गये हैं...."

"तो ताया को कहिए न....वही लायें हमारे घर मुन्ना...."

"वे मुन्ना अपने ही घर लायेंगे....पगले कोई किसी के घर मुन्ना नहीं लाता है....भाग जाओ, खेलो, बहुत बातें करोगे तो मारूँगी, हाँ।"

—परसादी को क्या, वह तो चाहता था कि उसे किसी प्रकार एक मुन्ना मिल जाये। उस बेचारे को तो कोई मिट्टी का मुन्ना भी बनाकर न देता था।

किसी बरसाती शाम के साफ़ और सुनहरे झुटपुटे में वह बरकत वाला आँगन हर प्रकार और हर उम्र की लड़कियों, रंग-रँगीले चर्खों

और पट्टों की टोकरियों से भरना शुरू हो जाता। तमाम लड़कियाँ उम्र के खयाल से दो टोलियों में बँटकर ककरौंदे और खिरनी की आड़ में बैठ जातीं। छोटी लड़कियों की टोली खिरनी के नीचे होती। इसलिए कि बड़ी लड़कियों का विचार था कि इन कल की बच्चियों को चुनरी ओढ़ने का तो सलीक़ा नहीं और वे उनके गाने को भी तो नहीं समझ सकतीं, सिर्फ़ मुँह उठाकर एकटक उनकी तरफ़ देखने लगती हैं। फिर शर्म आने लगती है, मुँह लाल हो जाता है, गाना गले में अटक जाता है। फिर मल्लू कन्हैया के बारे में बातें करने में भी उन्हें कोई मज़ा नहीं आ सकता....। और वे तकले पर से धागे की लम्बी-सी तार उठाती हुई एकदम रुककर अंटी के नीचे टोकरियों में से भुने हुए दाने और गुड़ खातीं। तभी तो वे सब-की-सब गर्म थीं, रतनी की भाँति....और उनके छोटे भाई उनके साथ कड़ी सर्दी में सोने के लिए मचलते थे।

रामकली 'दो सुखना' कहती और दूसरी कोई राग अलापकर अपना सिर ककरौंदे में छिपा लेती, तीसरी 'अनमिल' कहती हुई बेल से लिपट जाती। और जब आम पर कोयल 'कू'-'कू' करती तो धीरा कहती— 'हाय-हाय'....जैसे बड़ा ही दुख पहुँच रहा हो।

इसीलिए तो वे छोटी लड़कियों से कटकर अलग बैठती थीं। परसादी ने छोटी लड़कियों को इस प्रकार का दुख पहुँचते कभी नहीं देखा। वे तो चुपचाप खिरनी के पेड़ के नीचे बैठकर पहेलियाँ कहतीं। उन्हें और खुद परसादी को वही सीधी-सादी पहेलियाँ बहुत प्यारी थीं, इसलिए कि खुद उनका जीवन भी एक सरल-सी पहेली था, उन पर अभी तक वह भेद नहीं खुला था जो रामकली, रतनी, खेमो, धीरा और अपेक्षाकृत बड़ी लड़कियों पर खुल गया था।

हाँ, एक बात परसादी ने बहुत महसूस की। वह यह थी कि

ककरौंदे की ओट में बैठने वाली बड़ी लड़कियों में आये दिन हेर-फेर होता रहता। और जैसे भरी दुनिया में दायें-बायें से कभी-कभी आवाज़ आती है कि अमुक 'काल-बस' हो गया, इसी तरह उनमें आवाज़ आती :

"चम्पो भी ब्याही गयी...."

या—

"रामकली भी गयी....चलो छुट्टी हुई....परमात्मा करे अपने घर बैठी लाखों बरस सुहाग मनाये....लाखों बरस !"

और फिर—

"बहन ! धीरा के बग़ैर तो गाने का मज़ा ही नहीं आता। कैसी लटक के साथ कहती थी, 'वा बिन सब जग लागे फीका !' कितनी सुन्दर थी। जब नाक में तीली डालती तो यों दिखायी देती थी जैसे गहनों से लदी हो।"

और फिर एक और बोल उठती—"धीरा बहुत गुड़ खाती थी.... कहते हैं, बहुत गुड़ खाना औलाद के लिए अच्छा नहीं होता।"

तो क्या ककरौंदे के नीचे बैठी हुई टोली में कमी हो जाती? बिलकुल नहीं। क्योंकि चम्पो, रामकली और धीरा जैसी सुहाग मनाने के लिए चली जाने वाली लड़कियों का स्थान खिरनी के तले पहेलियाँ कहती हुई लड़कियाँ धीरे-धीरे भर देतीं और खिरनी के नीचे बैठी लड़कियों की खाली जगह भरने के लिए मुहल्ला शहसवानी टोले की माँएँ बड़ी संख्या में लड़कियाँ जनतीं और यों सिलसिला बँधा रहता। या शायद यह सब कुछ इसलिए होता कि जगतगुरु जी के आँगन में वह रेल-पेल, वह धमाचौकड़ी हमेशा बनी रहे।

अगहन और पूस के दिन थे जब मकर संक्रांति आयी और स्त्रियाँ ढके हुए फल-फूलों का विनिमय करने लगीं और एक दूसरे के सुहाग

के बहुत दिनों तक बने रहने के आशीर्वाद देने लगीं। कुँआरी कोकिलाओं ने भी भावी सुखमय जीवन की अगवानी में एक दूसरे के शगुन मनाये। घर के मर्द इन औरतों की आज़ादी में दखल देने से डरते हुए अपनी गुड़गुड़ी आदि उठाकर ठाकुरद्वारे चले गये....। परसादी की ताई अम्मा इन दिनों बड़ी चिन्तित थीं। कहती थीं, "मैं छोकरी के हाथ पीले कर दूँ तो अपनी नींद सोऊँ। अभी तक वर नहीं मिला.... यह संजोग की बात है न....परमात्मा ही करनहार है....स्त्री-पुरुष का वही मेल मिलाता है....जहाँ संजोग होंगे....हे परमात्मा!—"

उस रोज़ सभी स्त्रियाँ बरामदे में बैठी हँसी-मज़ाक कर रही थीं। एकाएक परसादी की ताई अम्मा ने सब को सम्बोधित करते हुए कहा :

"लो बेटी....तैयार हो जाओ सब....अब मैं अपनी छोकरी की लूट मचाऊँगी....।"

—इस त्योहार में यह रस्म भी अजीब होती है। जिसकी लड़की बहुत जवान और विवाह योग्य हो जाये, वह उसकी लूट मचाती है। ताई अम्मा की तरह कोई बूढ़ी सुहागिन उठकर गरी, छुहारे, बेर और भाँति-भाँति की फल-फलारी लड़की के सिर पर से मुठ्ठियाँ भर-भरकर गिराती है। जब वह चीज़ें नीचे बिखर जाती हैं तो सारी कुँआरी कोकिलाएँ और सुहागिनें फल-फूलों को लूटने के लिए जगतगुरु जी के आँगन में उगे हुए पेड़ों और बेल के पत्तों की तरह खिचड़ी हो जाती हैं। हर एक की यह इच्छा होती है कि वह फल खाये। अगर सुहागिन खाये तो इसका मतलब होता है कि उसके सुहाग की उम्र लम्बी हो जाती है—शायद लाख बरस। बाँझ खाये तो उसके चाँद-सा बेटा पैदा होता है, कुँआरी खाये तो उसका शीघ्र ही विवाह हो जाता है, अच्छा-सा वर मिल जाता है। इसीलिए तो कुँआरी लड़कियाँ उठाकर

चुपके-चुपके और चोरी-चोरी वह फल खाती हैं।

परसादी ने देखा रतनी आपे से बाहर हो रही थी....परसादी की माँ ने उसे बताया कि छोकरी की लूट का मतलब यह होता है कि तुम्हारी बहन को कोई ब्याह ले जायेगा—कोई लूटकर ले जायेगा....और परसादी की अम्मा हँसने लगीं: "ताई अम्मा खुद भी तो अपनी छोकरी के लुट जाने को पसन्द करती हैं और ऐसे आदमी की खोज में हैं जो उसे सिर से पाँव तक अपनी ही सम्पत्ति बनाकर डोली में बैठाकर चल दे, और बड़े शोर-गुल के साथ....बाजे बजवाता हुआ....और फिर घर में से आधी जायदाद लूटकर ले जाये...."

परसादी ने सोचा, किसी को क्या? मुसीबत तो उसे होगी। सर्दियों में रतनी चली जायेगी तो उसके बिस्तर को कौन गर्म करेगा? ताई अम्मा तो बर्फ़ की तरह ठंडी हैं और अम्मा तो सारी रात खाँसती रहती हैं। इधर-से-उधर और उधर-से-इधर करवट बदलती और छत की कड़ियाँ गिनती चली जाती हैं, न आप सोती हैं, न सोने देती हैं। कहती हैं, मेरे साथ सोना अच्छा नहीं....मुझे क्षय है!

*

ताया जगतगुरु ठुंडीराम बड़े कारीगर थे। तभी तो लोग उन्हें जगतगुरु कहते थे। सुबह शहर में भेजने के लिए कैलेंडरों की चिफ़तियाँ बनवाते रहते। आठ बजे के अन्दर-अन्दर खोये में गजरेला तैयार कर लिया और फिर झट से काम पर भी चले गये। बला के आदमी थे जगतगुरु। उस दिन परसादी भी उनके साथ काम पर गया।

जगतगुरु चुंगी महसूल पर मुहर्रिर थे। सारे दिन वे गुलक़न्द में प्रयुक्त होने वाले गुलाब के फूलों और कच्ची खालों पर महसूल लगाते

रहे। कभी-कभी किसी से कुछ लेकर उसे योंही छोड़ देते। आखिर जगतगुरु थे न, और रतनी की लूट मचानी थी। इस तरह धेला-धेला, पैसा-पैसा करके ही तो कुछ बनता है, तभी तो वे मोटे होते जा रहे थे। कहते हैं रिश्वत लेने में आदमी मोटा होता है और अन्तरात्मा सूख जाती है। किन्तु शरीर तो दिखायी देता है, अन्तरात्मा किसे नज़र आती है।

चुंगी पर खुशिया और वफ़ाती आये। वर तो उन्हें अच्छा मिल गया था, बहुत ही अच्छा। अब साहे की तारीख लेनी थी। जगतगुरु ने लड़के और लड़की की जन्मपत्री पंडित जी को दिखाकर तारीख सधवा रखी थी और जन्मपत्रियाँ जेब में लिये फिरते थे। खुशिया और वफ़ाती के पूछने पर फ़ौरन तारीख बता दी। लड़के की तरफ़ से कोई मीर मद्दू आया था। सब 'बड़े भाग जजमान के....बड़े भाग जजमान के....'कहते हुए विदा हुए।

ताई अम्मा बड़ी बेसब्री से साहे की प्रतीक्षा करने लगीं। उन्होंने चाँदी के कई बर्तन बनवाये, सोने के झूमर, जड़ाऊ नेकलेस, घड़ी-चूड़ी और तरह-तरह के ज़ेवर तैयार करवा लिये। आखिर इसी बात के लिए तो ताया ने गुलक़न्द बनाने के काम आने वाली गुलाब की गाँठें दो-दो, चार-चार आने लेकर छोड़ दी थीं और कच्ची खालों की दो-दो, चार-चार रुपये लेकर....बीसियों गिलास, बड़ी कड़ाही, हम्माम.... एक बड़ा-सा पलंग भी खरीदा था ताया ने। उस पर परसादी और रतनी ऐसे छः सो जायें। फिर कुर्सी, मेज़, सिंगारदान, बाजा, लड़की के सूट, लड़के के कपड़े और विदाई पर रुपये देने के लिए शहर के नोट-घर से नये रुपये मँगवाये—और परसादी सोचने लगा, क्या यह सब लुटा देने के लिए है?

परसादी ने कहा, ताया कुछ इतने सयाने नहीं दिखायी देते। मगर वफ़ाती, खुशिया, बेलीराम और अड़ोस-पड़ोस के सब आदमी जगतगुरु की वाह-वाह कर रहे थे। लड़की का दान करना सौ गाय के दान के बराबर होता है। तुलादान से कम फल नहीं मिलता। वे सब कहते, भई जगतगुरु को यह नाम जद्दी थोड़े ही मिला है। इसीलिए तो यह नाम दिया है, बड़े सयाने, बड़े कारीगर आदमी हैं। ईश्वर किसी को बेटी दे तो लुटाने के लिए इतना धन भी दे....वाह वा....वाह वा....!

परसादी ने अम्मा से ताया की समझदारी के बारे में पूछा तो वह कहने लगी, "बेटा! यह छोकरी की लूट आज से नहीं, जब से दुनिया बनी है, चली आ रही है। सब अपनी-अपनी बेटियों को योंही दे देते हैं। इतनी दौलत और धन भी....हाय! इस पर भी बस हो तो कोई लाख मनाये। बेटियों वाले मिन्नत करते हैं, पाँव पड़ते हैं, क्या जाने उसके ससुराल वाले रूठ जायँ। तब जाकर सारी उम्र के लिए कोई किसी की बेटी लेता है। कोई बहुत बेढब होता है तो ले-देकर भी नहीं बसाता....और फिर किसी नसीबों-जली का बना-बनाया सुहाग उजड़ जाता है....।"

और परसादी की माँ की आँखें डबडबा आयीं। वे बोलीं :

"परसू! तू भी बड़ा होकर एक छोकरी लूट लायेगा। इसी तरह धन-दौलत समेत....ईश्वर तेरी उम्र चार जुग लम्बी करे!....उसे अच्छी तरह बसाना। मुझे निश्चय है, मैं वह भाग्यवान समय अपनी आँखों से न देख सकूँगी।"

और परसादी की माँ रोने लगीं। परसादी ने पूछा : "तू कहाँ चली जायेगी माँ?"

वे अपनी आवाज़ को दबाती हुई बोलीं :

"तुम्हारे पिता के पास....वे भी मुझे इसी तरह लूटकर लाये थे। मैं उन्हीं की हूँ।"

—परसादी बुझे हुए तन्दूर में टाँगें लटकाये सारा दिन उदास बैठा सोचता रहा—मैं बड़ा हूँगा और एक छोकरी को लूट लाऊँगा। उस लड़की के घर ककरौंदे की बेल के नीचे एक लड़की की कमी हो जायेगी, जिसे और कोई पूरा करेगी। हाँ! वह भी तो अपने किसी भाई को सर्दियों में अपने बिस्तरे में जम जाने के लिए या ताई अम्मा के बर्फ़-से ठंडे बदन के साथ लगकर सोने के लिए छोड़ आयेगी। उसका भाई तो रह-रहकर मुझे गालियाँ देगा और कहेगा इससे तो अच्छा है कि मैं काल-बस हो जाऊँ।

साहे के दिन परसादी के जीजा बहुत से आदमियों के साथ आये। अगर अम्मा न रोकती तो परसादी लट्ठ लेकर सबका सामना करता। फिर किसी की क्या मजाल थी कि रतनी को इतनी बेदर्दी से लूट ले जाने का साहस करता, यद्यपि जगतगुरु और ताई अम्मा को इस लूट में खुशी थी। ताई अम्मा मंडप में झंडियों और लकड़ी की चिड़ियों के नीचे बैठी थीं, इर्द-गिर्द औरतें गा रही थीं, बाहर बाजा बज रहा था और पंडित जी के श्लोकों की आवाज़ इस शोर-गुल से अलग सुनी जा सकती थी। जब फेरे हो गये तो सब ने ताई अम्मा और जगतगुरु को बधाई दी। ताई अम्मा की सुर्ख़ फुलकारी और जगतगुरु जी की गुलाबी पगड़ी पर केसर के निशान लगाये गये और पीले-पीले फूल और पंखुड़ियाँ बरसायी गयीं, जैसे उन्होंने रतनी को लुटाकर बहुत अक्लमंदी दिखायी हो। ताई और अम्मा ने बोझ हल्का होने के भाव से लूट की इस खुशी में दूध के दो बड़े कटोरे

भरकर पिये ।

परसादी को जीजा एक आँख न भाता था। परसादी ने कहा, यह मुर्दा-सा, काला-कलूटा आदमी रतनी बहन को लूटकर ले जायगा। रतनी तो इसकी शक्ल देखकर ग़श खा जायेगी। लूटकर ले जाने वाले डाकू ही तो होते हैं, बुरी-बुरी और डरावनी शक्ल के....इसमें और उनमें इतना ही तो अंतर है कि डाकू मुंडासा बाँधकर आते हैं और यह काला-कलूटा जीजा सेहरा बाँधकर आया है।

जब कहारों ने डोली उठायी तो घर भर में कुहराम मच गया। आज फिर ककरौंदे के नीचे एक जगह खाली हो रही थी। ताई अम्मा ऊँचे-ऊँचे रोने लगीं, "हाय! बेटी का धन अजीब है। पैदा हुई, रातें जाग, मुसीबतें सह, गू-मूत से निकाला, पाला, पढ़ाया, जवान किया। अब यों जा रही है जैसे मैं उसकी कुछ होती ही नहीं। भगवान! बेटी किसी की कोख में न पड़े। उसके विदा होने का दुख बुरा....हाय! इस तरह तो कोई आँखें नहीं फेरता।" जगतगुरु परसादी की तरह बिलखने लगे। अम्मा तो दीवार से टक्करें मारने लगीं, "हाय! मुझसे तो रतनी का बिछोड़ा न सहा जायगा। मेरी बेटी ने तो मुझे दोहाग (वैधव्य) का दुख भुला दिया था....हाय इस संसार की रीत झूठी, इससे प्रीत झूठी....जा ....बेटी जा....जा अपने घर सुखी रह! तेरी महक हमें यहाँ आती रहे। तू लाखों बरस सुहाग मनाये!"

सारी लड़कियाँ बिछोड़ा गाते-गाते रुक-रुक गयीं।

डोली का पर्दा उठा, रतनी ने परसादी को गले से लगाकर खूब भींचा। परसादी भी उसे रोता देखकर खूब रोया। रतनी कहती थी, "परसू भय्या!—मेरे लाल! तू मेरे बग़ैर सोता ही न था। अब तू रतनी को कहाँ ढूँढेगा?"

फिर सब को सम्बोधित करते हुए कहने लगी :

"मुझे इस घर में रखने की हामी कोई नहीं भरता। सभी तो मेरी जान के लागू हो रहे हैं।"

और जब जीते-जागते आदमियों में से किसी ने उसे न ठहराया तो रतनी दादा और चम्बाराम चाचा को याद करके रोने लगी। दीवारों से बातें करने लगी...."मेरे बाबुल के घर के द्वार, यह महल, यह झाड़ियाँ, मैं समझती थी, मेरा अपना घर है। खिरनी....और मेरे मीठे आम.... निर्दयी पिता! तेरे बसते मन्दिरों में से मुझे ज़बरदस्ती निकालकर ले जा रहे हैं....यहाँ का दाना-पानी छूट गया।"

*

जब रतनी चली गयी तो परसादी फिर उसी बुझे हुए तन्दूर पर उदास बैठा उधेड़-बुन करता रहा। तरह-तरह के विचार और शंकाएँ उसके मन में उठीं। उसने कहा, ताई और अम्मा के विचार से जब परमात्मा ही पुरुष और स्त्री का मेल मिलाता है तो फिर खुशिया और वफ़ाती की क्या ज़रूरत है? वे यों भी तो घर में से सेरों आटा, गुड़ और घी ले जाते हैं, गट्ठों-के-गट्ठे गन्नों के....साग-पात, पक्का-कच्चा—बदमाश कहीं के....सिर्फ़ इतनी-सी बात कहते हैं, "बड़े भाग जजमानी के....बड़े भाग जजमानी के।" और ला देते हैं इतना मुर्दा-सा और काला-कलूटा जीजा—परमात्मा के किये में दखल देते हैं न! क्यों नहीं मल्लू कन्हैया रतनी को ले जाते। परमात्मा ने आप ही तो मेल मिला दिया था। और रतनी भी तो यही कहती थी कि तुम्हारा जीजा मल्लू कन्हैया है। कभी किसी के दो-दो जीजे भी होते हैं? मैं तो मल्लू कन्हैया ही को जीजा कहूँगा, इस मर्दुए को कभी नहीं, लाख ज़ोर करे कोई।

न जाने यह लोग छोकरी की लूट के इतने इच्छुक क्यों होते हैं। पल-पल गिनकर साहे की प्रतीक्षा करते हैं। फेरों के बाद दूध के कटोरे पीते और बधाइयाँ लेते हैं। और फिर जब लूट होती है तब रोते हैं। इतना मूर्ख कौन होगा जो आप ही सब काम-काज करे और फिर रोये, जैसे कोई काल-वस हो गया हो। और फिर रतनी की तो जाने की इच्छा न थी। वह दहलीज़ पकड़-पकड़कर रोती थी। वेचारी का बुरा हाल था।

सब घर लुटा दिया और फिर हाथ जोड़ते रहे, क़बूल करो। मैं तो यों कभी किसी के पाँव न पड़ूँ। पहले तो दूँ ही नहीं। दूँ तो यों पाँव पड़कर मिन्नतें करके कभी न दूँ। न लें तो जायें भाड़ में!

उस दिन परसादी सारी रात ताई अम्मा के बर्फ़ के-से ठंडे बदन के साथ लगकर जागता रहा।

कुछ दिनों बाद रतनी आप-ही-आप आ गयी। परसादी को उसने बहुत चूमा, प्यार किया जैसे वह अब अपने नन्हें से भाई को छोड़कर कहीं न जायेगी और उसे खुद भी छोकरी की लूट पसन्द नहीं। उस रात परसादी बड़े सुख और चैन से रतनी के साथ सोया। रतनी सारी रात प्यार से परसादी को भींचती रही—जब सुबह सवेरे आँख खुली तो रतनी बिस्तर में न थी। पता चला कि वही लुटेरा उसे लूटकर ले गया था।

परसादी फिर रोया मगर अम्मा ने कहा : "बेटा! यह रस्म आज से नहीं, जब से दुनिया बनी है, चली आयी है।"

सोचते हुए परसादी ने कहा, "बड़े नखरे करती थी रतनी। सच्ची बात तो यह है कि यह छोकरियाँ खुद भी लुट जाना पसन्द करती हैं। वे तो अपने सोते हुए भाइयों के जागने की प्रतीक्षा भी नहीं करतीं और काले-कलूटे जीजा के साथ भाग जाती हैं।"

अब की जो रतनी आयी तो छोकरी की लूट के बारे में परसादी ने अपना दृष्टिकोण बिलकुल उलट दिया था। उसने कहा, "दरअसल यह लूट सब के लिए अच्छी होती है। ताई, अम्मा, जगतगुरु और खुद रतनी भी इसे पसन्द करती है। और खास तौर पर उसे भी अच्छी लगती है, मुन्ना तो मिल जाता है। रतनी ने उसे जीजा की तरह दुबला-पतला मगर अपनी तरह गोर-चिट्टा मुन्ना खेलने को ला दिया था—परसादी ने माँ को बुलाते हुए कहा :

"भोली माँ....तू तो जतन करने से रही....क्या तू न लुटेगी माँ ?"

गर्म कोट

मैंने देखा है, मेराजुद्दीन टेलर मास्टर की दुकान पर बहुत से बढ़िया सूट टँगे होते हैं। उन्हें देखकर प्रायः मेरे दिल में खयाल पैदा होता है कि मेरा अपना गर्म कोट बिलकुल फट गया है और इस साल हाथ तंग होने के बावजूद मुझे एक नया गर्म कोट ज़रूर सिलवा लेना चाहिए। टेलर मास्टर की दुकान के सामने से गुज़रना या अपने विभाग के क्लब में जाना छोड़ दूँ तो सम्भव है मुझे गर्म कोट का खयाल भी न आये, क्योंकि क्लब में जब संतासिंह और यज़दानी के कोटों के नफ़ीस वर्स्टेड (Worsted) जब मेरे कल्पना के घोड़े को एड़ लगाते हैं तो मुझे अपने कोट का फटा होना और भी ज़्यादा महसूस होने लगता है। यानी जैसे वह पहले से कहीं ज़्यादा फट गया है।

बीवी-बच्चों को पेट भर रोटी खिलाने के लिए मेरे जैसे साधारण क्लर्क को अपनी बहुत-सी आवश्यकताएँ छोड़ देनी पड़ती हैं और उन्हें कलेजे तक पहुँचती हुई सर्दी से बचाने के लिए खुद मोटा-झोटा पहनना पड़ता है....यह गर्म कोट मैंने पारसाल दिल्ली दरवाज़े से बाहर पुराने कोटों की एक दुकान से मोल लिया था। कोटों के व्यापारी ने पुराने

कोटों की सैकड़ों गाँठें किसी मरांजा-मरांजा एण्ड कम्पनी कराची से मँगवायी थीं। मेरे कोट में नक़ली सिल्क के अस्तर से बनी हुई अन्दरूनी जेब के नीचे मरांजा-मरांजा एण्ड कम्पनी का लेबल लगा हुआ था। मगर कोट मिला मुझे बहुत सस्ता। महँगा रोये एक बार, सस्ता रोये बार-बार—और मेरा कोट हमेशा फटा ही रहता था।

इसी दिसम्बर की एक शाम को क्लब से वापस आते हुए मैं जान-बूझकर अनारकली में से गुज़रा। उस वक्त मेरी जेब में दस रुपये का एक नोट था। आटा, दाल, ईंधन, बिजली, बीमा कम्पनी के बिल चुका देने पर मेरे पास वही दस रुपये का नोट बच रहा था....जेब में दाम हों तो अनारकली से गुज़रने में बुराई नहीं। उस समय अपने आप पर गुस्सा भी नहीं आता, बल्कि अपनी ज़ात आदमी को कुछ भली मालूम होती है। उस समय अनारकली में चारों तरफ़ सूट-ही-सूट नज़र आ रहे थे, और साड़ियाँ। कुछ वर्षों से हर नत्थू खैरा सूट पहनने लगा है....मैंने सुना है पिछले कुछ वर्षों में कई टन सोना हमारे देश से बाहर चला गया है। शायद इसीलिए लोग शारीरिक सजावट का ख़याल भी बहुत ज़्यादा रखते हैं। नये-नये सूट पहनना और खूब शान से रहना हमारी निर्धनता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। वरना जो लोग सचमुच अमीर हैं, वे ऐसी शान-शौक़त और ऊपरी टीम-टाम की कुछ परवाह नहीं करते।

कपड़े की दुकान में वर्स्टेड के थानों-के-थान खुले पड़े थे। उन्हें देखते हुए मैंने कहा, क्या मैं इस महीने के बचे हुए दस रुपयों में से कोट का कपड़ा खरीदकर बीवी-बच्चों को भूखा मारूँ? लेकिन कुछ देर के बाद मेरे हृदय में नया कोट ख़रीदने के उस नापाक ख़याल के विरुद्ध प्रतिक्रिया शुरू हो गयी। मैं अपने पुराने गर्म कोट का बटन पकड़कर उसे उमेठने लगा। चूँकि तेज़-तेज़ चलने से मेरे शरीर में गर्मी आ

गयी थी, इसलिए मौसम की सर्दी और उस तरह के बाहरी प्रभाव मेरे कोट खरीदने के इरादे को पक्का करने में असफल रहे। मुझे तो अपना वह कोट भी महज़ दिखावट मालूम हुआ।

ऐसा क्यों हुआ? मैंने कहा है कि जो व्यक्ति दरअसल धनी हैं वे ऊपरी शान की बिलकुल परवाह नहीं करते। जो लोग सचमुच अमीर हों उन्हें तो फटे हुए कोट बल्कि क़मीज़ तक को बेकार समझना चाहिए। तो क्या मैं सचमुच अमीर था कि....?

मैंने घबराकर आत्म-विश्लेषण करना छोड़ दिया और किसी तरह दस का नोट सही-सलामत लिये घर पहुँचा।

शम्मी, मेरी पत्नी, मेरी प्रतीक्षा में थी।

आटा गूँधते हुए उसने आग फूँकनी शुरू कर दी—कम्बख़्त मंगल सिंह ने इस दफ़ा गीली लकड़ियाँ भेजी थीं। आग जलने का नाम ही न लेती थी। ज़्यादा फूँकें मारने से गीली लकड़ियों में से और भी ज़्यादा धुआँ उठा। शम्मी की आँखें लाल अंगारा हो गयीं। उन से पानी बहने लगा।

"कमबख़्त कहीं का....मंगल सिंह," मैंने कहा। "इन भीगी आँखों के लिए मंगल सिंह तो क्या, मैं सारी दुनिया से युद्ध करने को तैयार हो जाऊँ...."

बड़ी कोशिश के बाद लकड़ियाँ धीरे-धीरे चटख़ने लगीं। आख़िर उन भीगी आँखों के पानी ने मेरी क्रोधाग्नि बुझा दी। शम्मी ने मेरे कन्धे पर सिर रखा और मेरे फटे हुए गर्म कोट में पतली-पतली उँगलियाँ डालती हुई बोली:

"अब तो यह बिलकुल काम का नहीं रहा।"

मैंने धीमी-सी आवाज़ से कहा, "हाँ!"

"सी दूँ ?....यहाँ से...."

"सी दो। अगर कोई एक-आध तार निकालकर रफ़ू कर दो तो क्या कहने हैं।"

कोट को उलटाते हुए शम्मी बोली, "अस्तर को तो मुई टिड्डियाँ चाट रही हैं....नक़ली रेशम का है न....यह देखिए।"

मैंने शम्मी से अपना कोट छीन लिया और कहा, मशीन के पास बैठने की बजाय तुम मेरे पास बैठो शम्मी....देखती नहीं हो दफ्तर से आ रहा हूँ....यह काम तुम उस समय कर लेना जब मैं सो जाऊँ।"

शम्मी मुस्कराने लगी।

वह शम्मी की मुस्कराहट और मेरा फटा कोट!

शम्मी ने खुद ही कोट को एक तरफ़ रख दिया। बोली, "मैं स्वयं इस कोट की मरम्मत करते-करते थक गयी हूँ....इसकी मरम्मत करने में इस गीले ईंधन को जलाने की तरह जान खपानी पड़ती है। आँखें दुखने लगती हैं....आखिर आप अपने कोट के लिए कपड़ा क्यों नहीं खरीदते ?"

मैं कुछ देर सोचता रहा।

यों तो मैं अपने कोट के लिए कपड़ा खरीदना पाप समझता था। मगर शम्मी की आँखें....उन आँखों को बचाने के लिए मैं मंगल सिंह तो क्या, सारी दुनिया से लड़ने को तैयार हो जाऊँ, वर्स्टेड के थानों-के-थान खरीद लूँ। नये गर्म कोट के लिए कपड़ा खरीदने का खयाल दिल में पैदा हुआ ही था कि पुष्पा मुन्नी भागती हुई कहीं से आ गयी। आते ही बरामदे में नाचने और गाने लगी। उसके हाव-भाव कथाकली की मुद्राओं से भी अधिक आकर्षक थे।

मुझे देखते ही पुष्पा मुन्नी ने अपना नाच और गाना खत्म कर

दिया और बोली :

"बाबू जी....आप आ गये ?—आज बड़ी बहन जी (अध्यापिका) ने कहा था, मेज़पोश के लिए दुसूती लाना और गर्म कपड़े पर काट सिखायी जायगी। गुनिया माप के लिए और गर्म कपड़ा...."

चूँकि इस समय मेरे गर्म कोट खरीदने की बात हो रही थी, शम्मी ने ज़ोर से एक चपत उसके मुँह पर लगायी और बोली :

"इस 'जनमजली' को हर वक्त....हर वक्त कुछ-न-कुछ खरीदना ही होता है....मुश्किल से इन्हें कोट सिलवाने पर राज़ी कर रही हूँ....

—वह पुष्पा मुन्नी का रोना और मेरा नया कोट !

मैंने आदत के खिलाफ़ ऊँची आवाज़ में कहा, "शम्मी !"

शम्मी काँप गयी। मैंने गुस्से से आँखें लाल करते हुए कहा, "मेरे इस कोट की मरम्मत कर दो....अभी....किसी तरह करो। ऐसे जैसे रो-पीटकर मंगल सिंह की लकड़ियाँ जला लेती हो....तुम्हारी आँखें ! हाँ, याद आया। देखो तो पुष्पा मुन्नी कैसे रो रही है। पोपी बेटा ! इधर आओ न....इधर आओ मेरी बच्ची ! क्या कहा था तुमने ? बोलो तो.... दुसूती ? गुनिया माप के लिए और काट सीखने को गर्म कपड़ा ?—बच्चू नन्हा भी तो ट्राइसिकल का राग अलापता और गुब्बारे के लिए मचलता सो गया होगा। उसे गुब्बारा न ले दोगी तो मेरा कोट सिल जायगा, है ना !....कितना रोया होगा बेचारा....शम्मी ! कहाँ है बच्चू ?"

"जी सो रहा है...." शम्मी ने सहमे हुए जवाब दिया।

"अगर मेरे गर्म कोट के लिए तुम इन बेचारों से ऐसा सलूक करोगी तो मुझे तुम्हारी आँखों की परवाह ही क्या है।" फिर मैंने दिल-ही-दिल में कहा—क्या यह सब कुछ मेरे गर्म कोट के लिए हो रहा है। शम्मी सच्ची है या मैं सच्चा हूँ। पहले मैंने कहा—दोनों....मगर जो सच्चा होता

है उसका हाथ हमेशा ऊपर रहता है। मैंने खुद ही दबते हुए कहा :

"तुम खुद भी तो उस दिन कपूरी रंग के मीनाकार काँटों के लिए कह रही थीं...."

"हाँ....जी....कह तो रही थी मगर...."

मगर....मगर उस वक़्त तो मुझे अपने गर्म कोट की जेब में दस रुपये का नोट एक बड़ा ख़ज़ाना मालूम हो रहा था !

*

दूसरे दिन शम्मी ने मेरा कोट कुहनियों पर से रफ़ू कर दिया। एक जगह, जहाँ पर से कपड़ा बिलकुल उड़ गया था, सफ़ाई और सावधानी से काम लेने पर भी सिलाई पर भद्दी सलवटें पड़ने लगीं। इस वक़्त मेराजुद्दीन टेलर मास्टर की दुकान मेरे मस्तिष्क में घूमने लगी। और यह मेरी कल्पना-शक्ति का चमत्कार था। मेरी कल्पना-शक्ति अक्सर मुझे मुसीबत में डाले रखती है। मैंने दिल में कहा, 'मेराजुद्दीन की दुकान पर ऐसे सूट भी तो होते हैं जिन पर सिलाई समेत सौ रुपये से भी ऊपर लागत आती है....मैं एक मामूली क्लर्क हूँ....उसकी दुकान में लटके हुए सूटों की कल्पना करना बेकार है....एकदम बेकार....'

मुझे फ़ुरसत से पाकर शम्मी मेरे पास आ बैठी और हम दोनों खरीदी जाने वाली चीज़ों की सूची बनाने लगे....जब माँ-बाप इकट्ठे होते हैं तो बच्चे भी आ जाते हैं....पुष्पा मुन्नी और बच्चू आ गये, आँधी-पानी की तरह शोर मचाते हुए।

मैंने शम्मी को खुश करने के लिए नहीं बल्कि यों ही कपूरी रंग के मीनाकार काँटे सबसे पहले लिखे। अचानक रसोई की तरफ़ मेरी नज़र उठी। चूल्हे में लकड़ियाँ धड़-धड़ जल रही थीं....और इधर शम्मी की

आँखें भी दो चमकदार सितारों की तरह रोशन थीं। मालूम हुआ कि मंगल सिंह गीली लकड़ियाँ वापस ले गया है।

"वह शहतूत के डंडे जल रहे हैं। और खोखा...." शम्मी ने कहा।

"और उपले ?"

"जी हाँ, उपले भी...."

"मंगल सिंह देवता है....शायद मैं भी जल्द ही गर्म कोट के लिए अच्छा-सा वर्स्टेड खरीद लूँ ताकि तुम्हारी आँखें यों ही चमकती रहें, इन्हें कष्ट न हो—इस महीने के वेतन में तो गुंजाइश नहीं....अगले महीने ज़रूर....ज़रूर...."

"जी हाँ, जब सर्दी बीत जायेगी...."

पुष्पा मुन्नी ने कई चीज़ें लिखायीं—दुसूती, गुनिया माप के लिए, गर्म ब्लेज़र हरे रंग का एक वर्ग गज़, डी० एम० सी० के गोले, गोटे की मग़ज़ी—और इमरतियाँ और बहुत से गुलाब जामुन....मुई ने सब कुछ तो लिखवा दिया। मुझे लगातार क़ब्ज़ रहता था। मैं चाहता था कि यूनानी दवाखाने से इतरीफ़ल ज़मानी का एक डिब्बा भी लाकर रखूँ, दूध के साथ थोड़ा-सा खाकर सो जाया करूँगा, मगर मुई पुष्पा ने इसके लिए गुंजाइश ही कहाँ रखी थी। और जब पुष्पा ने कहा 'गुलाब जामुन' तो उसके मुँह में पानी भर आया। मैंने कहा सबसे ज़रूरी चीज़ तो यही है....शहर से वापस आने पर मैं गुलाब जामुन वहाँ छिपा दूँगा जहाँ सीढ़ियों में बाहर जमादार अपना दूध का कलसा रख दिया करता है। और पुष्पा से कहूँगा कि मैं तो लाना ही भूल गया तुम्हारे लिए गुलाब जामुन !....ओ हो !....उस वक़्त उसके मुँह में पानी भर आयेगा और गुलाब जामुन न पाकर उसकी अजीब हालत होगी।

फिर मैंने सोचा, बच्चू भी तो सुबह से गुब्बारे और ट्राइसिकल के

लिए ज़िद कर रहा था। मैंने एक बार अपने आप से प्रश्न किया 'इतरीफ़ल ज़मानी ?' शम्मी बच्चू को पुचकारते हुए कह रही थी, बच्चू बेटी को ट्राइसिकल ले दूँगी अगले महीने....बच्चू बेटी सारा दिन चलाया करेगी ट्राइसिकल....पोपी मुन्ना कुछ नहीं लेगा...."

बच्चू चलाया करे 'गी' और पोपी मुन्ना नहीं ले 'गा' !

—और मैंने शम्मी की आँखों की क़सम खायी कि जब तक ट्राइसिकल के लिए छः-सात रुपये जेब में न होंगे, मैं नीले गुम्बद के बाज़ार से नहीं गुज़रूँगा। इसलिए कि दाम न होने की स्थिति में नीले गुम्बद के बाज़ार से गुज़रना बहुत बुरी बात है। बेकार अपने आप पर ग़ुस्सा आयेगा, अपने आप से घृणा होगी।

उस समय शम्मी बेल्जियन दर्पण की अंडाकार टुकड़ी के सामने अपने सफ़ेद सूट में खड़ी थी। मैं चुपके से उसके पीछे जा खड़ा हुआ और कहने लगा, "मैं बताऊँ इस समय तुम क्या सोच रही हो ?"

"बताओ तो जानूँ...."

"तुम कह रही हो, कपूरी सफ़ेद सूट के साथ वह कपूरी मीनाकार काँटे पहनकर ज़िलेदार की बीवी के यहाँ जाऊँ तो दंग रह जाये...."

"नहीं तो," शम्मी ने हँसते हुए कहा, "आप मेरी आँखों के प्रशंसक होते तो कभी का गर्म...."

मैंने शम्मी के मुँह पर हाथ रख दिया। मेरी तमाम खुशी बेबसी में बदल गयी। मैंने धीरे से कहा, "बस....इधर देखो....अगले महीने.... ज़रूर खरीद लूँगा...."

"जी हाँ, जब सर्दी...."

—फिर मैं अपने उस सुन्दर संसार को, जिसके रचने में कुल दस रुपये खर्च हुए थे, कल्पना में बसाये बाज़ार चला गया।

मेरे सिवा अनारकली से गुज़रने वाले हर इज़्ज़तदार आदमी ने सूट पहन रखा था। लाहौर के एक मोटे तगड़े जेंटिल मैन की गर्दन नेकटाई और कड़े कालर के कारण मेरे छोटे भाई के पालतू कुत्ते 'टाइगर' की गर्दन की तरह अकड़ी हुई थी। मैंने इन सूटों की तरफ़ देखते हुए कहा :

"लोग सचमुच बहुत ग़रीब हो गये हैं....इस महीने न मालूम कितना सोना-चाँदी हमारे देश से बाहर चला गया है।" काँटों की दुकान पर मैंने कई जोड़ काँटे देखे। अपनी कल्पना-शक्ति के बल पर मैं शम्मी के सफ़ेद कपूरी सूट पहने हुए कल्पना-चित्र को काँटे पहनाकर पसन्द या नापसन्द कर लेता ...कपूरी सफ़ेद सूट....कपूरी मीनाकार काँटे....काँटे इतने अधिक डिज़ाइनों के थे कि मैं उनमें से एक भी न छाँट सका।

उस वक्त बाज़ार में मुझे यज़दानी मिल गया। वह क्लब से, जो वास्तव में फ़्लाश क्लब थी, पन्द्रह रुपये जीतकर आया था। आज यदि उसके चेहरे पर सुर्ख़ी और ख़ुशी की लहरें दिखायी देती थीं तो कुछ आश्चर्य की बात न थी। मैं एक हाथ से अपनी जेब की सिलवटों को छिपाने लगा। निचली बायीं जेब पर एक रुपये के बराबर कोट से मिलते हुए रंग का पैवंद बहुत ही भद्दा दिखायी दे रहा था....मैं उसे भी एक हाथ से छिपाता रहा। फिर मैंने दिल में कहा, क्या ताज्जुब है कि यज़दानी ने मेरे कन्धे पर हाथ रखने के पहले मेरी जेब की सिलवटें और वह रुपये के बराबर कोट के रंग का पैवंद देख लिया हो....इसकी भी प्रतिक्रिया शुरू हुई और मैंने दिलेरी से कहा :

"मुझे क्या परवाह है....यज़दानी मुझे कौन-सी थैली दे देगा.... और इसमें बात ही क्या है। यज़दानी और संता सिंह ने मुझसे कई

बार कहा है कि वे बौद्धिक ऊँचाई की ज़्यादा परवाह करते हैं और वस्टेंड की कम!"

मुझसे कोई पूछे। मैं वस्टेंड की ज़्यादा परवाह करता हूँ और बौद्धिक ऊँचाई की कम।

यज़दानी चला गया। और जब तक वह आँखों से ओझल न हो गया, मैं ग़ौर से उसके कोट के नफ़ीस वस्टेंड को पीछे से देखता रहा।

फिर मैंने सोचा कि सब से पहले मुझे पुष्पा मुन्नी के गुलाब जामुन और इमरतियाँ खरीदनी चाहिएँ, कहीं वापसी पर सचमुच ही भूल न जाऊँ। घर पहुँचकर उन्हें छिपाने से खूब तमाशा रहेगा। मिठाई की दुकान पर खौलते हुए घी में कचौरियाँ खूब फूल रही थीं। मेरे मुँह में पानी भर आया, उसी तरह जैसे गुलाब जामुन की कल्पना से पुष्पा मुन्नी के मुँह में पानी भर आया था। कब्ज़ और इतरीफ़ल ज़मानी के खयाल के बावजूद मैं सफ़ेद पत्थर की मेज़ पर कुहनियाँ टिकाकर बड़े प्रेम से कचौरियाँ खाने लगा।

हाथ धोने के बाद जब मैंने पैसों के लिए जेब टटोली तो उसमें कुछ न था। दस रुपये का नोट कहीं गिर गया था।

कोट की अन्दरूनी जेब में एक बड़ा-सा छेद हो रहा था। नक़ली रेशम को टिड्डियाँ चाट गयी थीं। जेब में हाथ डालने पर उस जगह, जहाँ मरांजा-मरांजा एण्ड कम्पनी का लेबल लगा हुआ था, मेरा हाथ बाहर निकल आया। नोट वहीं से गिर गया होगा।

एक क्षण में मैं यों दिखायी देने लगा जैसे कोई भोली-सी भेड़ अपनी खूबसूरत पशम उतर जाने पर दिखायी देने लगती है।

हलवाई भाँप गया। खुद ही बोला :

"कोई बात नहीं बाबू जी....पैसे कल आ जायेंगे।"

मैं कुछ न बोला....कुछ बोल ही न सका।

केवल धन्यवाद के लिए मैंने हलवाई की ओर देखा। हलवाई के पास ही गुलाब जामुन चाशनी में डूबे पड़े थे। घी में खौलती हुई कचौरियों के धुएँ में से लाल अंगारे जैसी इमरतियाँ कलेजे पर दाग़ लगा रही थीं....और मस्तिष्क में पुष्पा मुन्नी की धुँधली-सी तस्वीर घूम गयी।

मैं वहाँ से बादामी बाग़ की तरफ़ चल दिया और आध-पौन घंटे के क़रीब बादामी बाग़ की रेलवे लाइन के साथ-साथ चलता रहा। इस अर्से में जंकशन की ओर से एक मालगाड़ी आयी। उसके पाँच मिनट बाद एक शण्ट करता हुआ इंजन जिसमें से दहकते लाल कोयले लाइन पर गिर रहे थे—मगर उस समय पास ही की सॉल्ट रिफ़ाइनरी में से बहुत से मज़दूर ओवर टाइम लगाकर वापस आ रहे थे....मैं लाइन के साथ-साथ नदी के पुल की ओर चल दिया। चाँदनी रात में सर्दी के बावजूद कॉलेज के कुछ मनचले नौजवान नाव चला रहे थे।

"भाग्य ने अजीब सज़ा दी है मुझे," मैंने कहा, "पुष्पा मुन्नी के लिए गोटे की मग़ज़ी, दुसूती, गुलाब जामुन और शम्मी के लिए कपूरी मीनाकार काँटे न खरीदने से भी बढ़कर कुछ पाप हो सकता है? किस निर्दयता से मेरी एक हसीन, लेकिन बहुत सस्ती दुनिया बरबाद कर दी गयी है....जी तो चाहता है कि मैं भी प्रकृति का एक खिलौना तोड़-फोड़कर रख दूँ...."

—मगर पानी में नाव चलाने वाला लड़का कह रहा था :

"इस मौसम में तो रावी का पानी घुटनों-घुटनों से अधिक कहीं नहीं होता।"

"सारा पानी तो ऊपर से नहर अपर-बारी दोआब ले लेती है.... और यों भी तो आजकल पहाड़ों पर बर्फ़ नहीं पिघलती," दूसरे ने कहा।

मैं विवश होकर घर की ओर लौटा और बहुत ही बेदिली से मैंने किवाड़ की ज़ंजीर हिलायी।

मेरी इच्छा और अनुमान के अनुसार पुष्पा मुन्नी और बच्चू नन्हा बहुत देर हुई दहलीज़ से उठकर बिस्तरों में जा सोये थे। शम्मी चूल्हे के पास शहतूत के अध-बुझे कोयलों को तापती हुई कई बार ऊँघी और कई बार चौंकी थी। वह मुझे खाली हाथ देखकर ठिठक गयी। उसके सामने मैंने चोर जेब के अन्दर हाथ डाला और लेबल के नीचे से निकाल लिया। शम्मी सब कुछ समझ गयी। वह कुछ न बोली.... कुछ बोल ही न सकी।

मैंने कोट खूँटी पर लटका दिया। मेरे पास ही दीवार का सहारा लेकर शम्मी बैठ गयी और हम दोनों सोये हुए बच्चों और खूँटी पर लटकते हुए गर्म कोट को देखने लगे।

अगर शम्मी ने मेरी प्रतीक्षा किये बग़ैर वह कपूरी सूट बदल दिया होता तो शायद मेरी दशा इतनी करुणाजनक न होती।

*

यज़दानी और संता सिंह क्लब में फ्लाश खेल रहे थे। उन्होंने दो घूँट पी भी रखी थी। मुझसे भी पीने का आग्रह करने लगे। मगर मैंने इन्कार कर दिया, इसलिए कि मेरी जेब में दाम न थे। संता सिंह ने अपनी तरफ़ से एक-आध घूँट ज़बरदस्ती मुझे भी पिला दिया, शायद इसलिए कि वे जान गये थे कि इसके पास पैसे नहीं हैं या शायद

इसलिए कि वे बौद्धिक ऊँचाई की वर्स्टेड से ज़्यादा परवाह करते थे।

यदि मैं घर में उस दिन शम्मी को वही कपूरी सफ़ेद सूट पहने हुए देखकर न आता तो शायद परेल में तक़दीर आज़माने को मेरा जी भी न चाहता। मैंने कहा, काश ! मेरी जेब में भी एक दो रुपये होते। क्या अजब था कि मैं बहुत से रुपये बना लेता। मगर मेरी जेब में तो कुल पौने चार आने थे।

यज़दानी और संता सिंह बहुत उम्दा वर्स्टेड के सूट पहने हुए नेक आलम, क्लब के सेक्रेटरी से झगड़ रहे थे। नेक आलम कह रहा था कि वह इस मनोरंजन क्लब को 'फ्लाश' और 'बार' बनते हुए कभी नहीं देख सकता। उस समय मैंने एक निराश व्यक्ति के खास ढंग से जेब में हाथ डाला और कहा : "बीवी-बच्चों के लिए कुछ खरीदना क़ुदरत की नज़र में गुनाह है। इस हिसाब से खेलने के लिए तो उसे अपनी गिरह से दाम दे देने चाहिएँ। ही ही....ग़ी....ग़ी...."

अन्दरूनी जेब....बायीं निचली जेब....कोट में पीछे की ओर मुझे कोई काग़ज़ सरकता हुआ लगा। उसे सरकाते हुए मैंने दायीं जेब के छेद के क़रीब जा निकाला।

—वह दस रुपये का नोट था जो उस दिन अन्दरूनी जेब की तह के छेद में से निकलकर कोट के अन्दर-ही-अन्दर गुम हो गया था।

उस दिन मैंने क़ुदरत से बदला लिया। उसकी इच्छानुसार मैं फ्लाश-व्लाश न खेला। नोट को मुट्ठी में दबाये घर की ओर भागा। अगर उस दिन मेरी प्रतीक्षा किये बग़ैर शम्मी ने वह कपूरी सूट बदल दिया होता तो मैं खुशी से यों पागल न हो जाता।

हाँ, फिर चलने लगी वही कल्पना की उड़ान, जैसे कि एक सुन्दर संसार के निर्माण में दस रुपये से ऊपर एक दमड़ी भी खर्च नहीं आती।

जब मैं बहुत-सी चीज़ों की सूची बना रहा था तो शम्मी ने मेरे हाथ से कागज़ लेकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया, और बोली :

"इतने क़िले मत बनाइए....फिर नोट को नज़र लग जायेगी।"

"शम्मी ठीक कहती है," मैंने सोचते हुए कहा, "न कल्पना इतनी रंगीन हो, न अभाव से इतना दुख पहुँचे।"

फिर मैंने कहा, "एक बात है शम्मी ! मुझे डर है कि नोट फिर कहीं मुझसे गुम न हो जाये....तुम्हारी खेमो पड़ोसिन बाज़ार जा रही है। उसके साथ जाकर तुम यह सब चीज़ें खुद ही खरीद लाओ.... कपूरी मीनाकार काँटे....डी० एम० सी० के गोले, मग़ज़ी....और देखो पोपी मुन्ना के लिए गुलाब जामुन ज़रूर लाना....ज़रूर...."

शम्मी ने खेमो के साथ जाना स्वीकार कर लिया और उस शाम शम्मी ने कश्मीरे का एक निहायत उम्दा सूट पहना।

बच्चों की चीख-पुकार से मेरी तबीयत बहुत घबराती है, मगर उस दिन मैं देर तक बच्चू नन्हें को उसकी माँ की अनुपस्थिति में बहलाता रहा। वह रसोई से ईंधन की कोलकी, ग़ुसलखाने, छत पर—सब जगह उसे ढूँढ़ता फिरा। मैंने उसे पुचकारते हुए कहा :

"वह ट्राइसिकल लेने गयी है....नहीं जाने दो। ट्राइसिकल गंदी चीज़ होती है। आख....चू....ग़ुब्बारा लायेगी बीबी, तुम्हारे लिए बहुत खूबसूरत ग़ुब्बारा...."

बच्चू बेटी ने मेरे सामने थूक दिया। बोली, "ऐ....ई....गंडी।"

मैंने कहा, "कोई देखे तो....कैसा बेटियों जैसा बेटा है।"

पुष्पा मुन्नी को भी मैंने गोद में ले लिया और कहा, "पोपी मुन्ना.... आज गुलाब जामुन जी भर खायेगा न...."

उसके मुँह में पानी भर आया। वह गोद से उतर पड़ी और बोली :

"ऐसा मालूम होता है....जैसे एक बड़ा गुलाब जामुन खा रही हूँ।"

बच्चू रोता रहा। पुष्पा मुन्नी कथाकली की मुद्रा से अधिक सुन्दर नाच बरामदे में नाचती रही।

मुझे कल्पना की उड़ानें भरने से कौन रोक सकता था। कहीं मेरे कल्पना के क़िले ज़मीन पर न आ रहें, इसीलिए तो मैंने शम्मी को बाज़ार भेजा था। मैं सोच रहा था, शम्मी अब घोड़ा अस्पताल के पास पहुँच चुकी होगी....अब कॉलेज रोड की नुक्कड़ पर होगी....अब गंदे इंजन के पास....

और बड़े ही धीमे से ज़ंजीर हिली।

शम्मी सचमुच आ गयी थी दरवाज़े पर।

शम्मी अन्दर आते हुए बोली, "मैंने दो रुपये खेमो से उधार लेकर भी खर्च कर डाले हैं।"

"कोई बात नहीं," मैंने कहा।

फिर बच्चू, पोपी मुन्ना और मैं तीनों शम्मी के आगे-पीछे घूमने लगे।

मगर शम्मी के हाथ में एक बंडल के सिवा कुछ न था। उसने मेज़ पर बंडल खोला....

—वह मेरे कोट के लिए निहायत नफ़ीस वर्स्टेड था।

पुष्पा मुन्नी ने कहा : "बीबी, मेरे लिए गुलाब जामुन...."

शम्मी ने ज़ोर से एक चपत उसके मुँह पर लगा दी!

★

बुक्की

"१६ ?"

"जी आँ—तीसरी लाइन में," बुक्की ने एक हाथ से अपने बालों को ज़रा दबाते हुए कहा। "आपको कष्ट करने की ज़रूरत ही न पड़ेगी साब, कंडक्टर स्वयं आपको सहायता देगा।"

"धन्यवाद, धन्यवाद," कहते हुए नौजवान मुस्कराया और मुस्कराते हुए उसने एक और चवन्नी काउँटर पर रख दी। चवन्नी जेब में डालते हुए बुक्की ने आँखें बन्द कर लीं, जैसे उसका दिमाग़ बहुत थक गया हो। वह दिन भर कलकत्ते की एक बीमा-कम्पनी में टाइप किया करती थी और रात को इस शानदार सिनेमा-हाउस में टिकट बेचा करती थी। थोड़े से वेतन के अलावा उसे किसी रसिक नौजवान के लिए किसी लड़की के बराबर वाली सीट बुक कर देने के बदले में चवन्नी अधिक मिल जाती थी। और उसकी आय पर एक बड़ा कुटुम्ब पल रहा था। एक बूढ़ी, हठीली माँ थी, जो खाना मिलने में ज़रा-सी देर हो जाने पर अपना मुँह आप ही नोच लेती थी। एक विधवा बहन थी, जिसे उसके पति ने अपने मरने के दो वर्ष पहले सिर्फ़ इसलिए

छोड़ दिया था कि आग जलाने के पहले वह घर भर में धुआँ भर देती थी, फिर छोटे भाई थे और भानजे........

कुछ देर बाद वही युवक ममोले की-सी तेज़ी से चलता हुआ काउँटर की ओर आया। आते ही उसने अपनी उँगलियाँ लकड़ी के काउँटर पर बजायीं और बोला, "लेकिन मा'म,....वहाँ तो कोई लड़की नहीं।"

बुक्की ने आँखें खोलते हुए कहा, "कहीं बाहर होगी साब...." उसने मुझसे टिकट खरीदा है। मुझे डर है कि आपको प्रतीक्षा करनी होगी।"

"उफ़!" नौजवान ने बेज़ारी से कहा, "सदा ऐसा ही होता है मिस—मा'म, सदा ऐसा ही होता है।"

फिर वह लड़का कुछ दूर जाकर सागौन के खूबसूरत चौखटों में लगे हुए 'स्टिल्ज़' को देखने लगा और बेचैनी से उसने 'आज रात को' के लाल लेबल फाड़ने शुरू कर दिये। फिर बुक्की के पास लौटते हुए बोला, "निराशा से तो प्रतीक्षा अच्छी है।"

बुक्की इस बेसब्र नौजवान को देखकर मुस्करा दी और दिल में उसके सुन्दर बालों को सराहने लगी। कितने अच्छे हैं इसके बाल! धन और चिन्ता में घिरे हुए सेठों की तरह वह गंजा नहीं है। न तोंदियल, न दुबला, बस....ठीक है। और इसके बाल धान के उन खेतों की भाँति हैं, जिन्होंने मानसूनी हवाओं से पूरा लाभ उठाया हो। उसकी चाल-ढाल और बातों से शराब की गन्ध आती है, यद्यपि उसने शराब शायद नहीं पी। इसका कारण यही है कि वह बहुत ही ज़्यादा जवान है। जैसे अंगूर पक जाते हैं तो उनसे शराब की बू आने लगती है।

कुछ देर बाद वह लड़का पर्दे उठाकर बड़े ग़ौर से सिनेमा की छत की ओर देखने लगा। छत में कृत्रिम सितारे चमक रहे थे। वह जानता था कि जब रोशनी बुझ जायगी तो यह सितारे और भी अधिक चमकने लगेंगे और बहुत सुन्दर दिखायी देंगे। छत की ओर देखने से आसमान का धोखा होगा और वह ज़रूर उस दृश्य को पसन्द करेगा और अपने साथ बैठी हुई लड़की से कहेगा—सितारे कितने सुन्दर हैं और....और यह सच है कि उसने तारों भरे आकाश पर कभी निगाह भी न दौड़ायी थी और न प्रकृति के उस कलकत्ते को कभी पसन्द किया था जो हर रोज़ रात के आकाश पर दिखायी देता है, लेकिन छत पर चमकते हुए सितारों को तो वह इसलिए पसन्द करता था कि उन पर सचमुच के सितारों का धोखा होता था और मनुष्य हमेशा सत्य की अपेक्षा उसके धोखे को पसन्द करता है।

फिर वह युवक बरामदे में एक दीवार के सहारे खड़ा हो गया। बुक्की का विश्वास था कि वह इस बेफ़िक्र नौजवान को पसन्द नहीं कर सकती, अलबत्ता बड़ी आसानी से घृणा कर सकती है। इसका कारण था कि वह बड़ी ही दयालु थी और शायद इसीलिए वह उसकी कल्पना को प्रेम की मैल से दूर रखना चाहती थी। नहीं तो उसके लिए यह कितना आसान था कि वह शो के शुरू हो जाने पर बुकिंग आफ़िस के सामने 'हाउस फ़ुल' का बोर्ड लगाकर उसके साथ की किसी सीट पर ख़ुद जा बैठती।

बरामदे की दीवार पर नयी-नयी पालिश हुई थी, इसलिए नौजवान के कपड़े कुछ गंदे हो गये, किन्तु अलग हटकर उसने फिर अपनी उँगली से दीवार को छुआ जैसे कपड़े गंदे हो जाने से उसे दीवार पर नयी पालिश होने का विश्वास ही न हुआ हो। फिर उसने उचटती

निगाहों से सिनेमा की घड़ी की ओर देखा जो दायीं दीवार से हटाकर मैनेजर के कमरे के ऊपर लगा दी गयी थी। उसने घड़ी को अपनी असली जगह पर देखकर फिर उसी जगह को देखा, जहाँ से वह हटायी गयी थी। बुक्की सोचने लगी, आदमी की आदत भी अजीब है। वह जानता है कि एक चीज़ इस जगह से उठाकर दूसरी जगह रख दी गयी है, लेकिन न जाने क्यों वह एक बार फिर उस जगह को देखता है, जहाँ से वह चीज़ उठा ली गयी हो, जैसे उसकी बुद्धि अचानक ही इस परिवर्तन को स्वीकार नहीं करती और शायद इसीलिए उसे २४ परगना के देहात में गुज़ारे हुए दिन बार-बार याद आते थे। वे दिन जब सभ्यता से दूर, अपने बाबा के यहाँ वह सुख-शांति का जीवन बिताती थी। लेकिन अब....कलकत्ते-सी सभ्य नगरी में जीवन के स्तर को बनाये रखने के लिए उसे क्या-कुछ न करना पड़ता था।

बुक्की ने अपने सामने पड़े हुए सीटों के प्लान पर दृष्टि डालनी शुरू की—आखिर ऐसे ही बेसब्र नौजवानों को किसी लड़की की बग़ल में जगह दे देने पर उसे चवन्नी मिलती थी। उसकी उँगली प्लान में खाली सीटों के साथ दौड़ने लगी। दूर नौजवान को बुक्की के नाखूनों की गुलाबी पालिश चमकती दिखायी दे रही थी। और वह नौजवान घूर-घूरकर उस चमकती हुई पालिश को देखने लगा, जैसे उसे उनके पालिश्ड होने का विश्वास न होता हो और वह उन नाखूनों को छूकर देखना चाहता हो।

छब्बीस....सत्ताईस....तीस, चौथी लाइन....बारह....

—बुक्की की निगाहें एक सीट पर जा रुकीं। वह शायद इस सीट पर निशान लगाना भूल गयी थी। उस सीट के लिए भी तो एक लड़की ने टिकट खरीदा था। वह इस लड़की को जानती भी थी—मिसेज़

द' सोज़ा....अल्लाह ! उसके साथ मिस्टर द' सोज़ा नहीं थे। वे थे या नहीं थे, यह बुक्की हल्के-हल्के सिर-दर्द में बिलकुल भूल चुकी थी। उसे तो उनकी शक्ल तक याद न रही थी। बुक्की ने अपने थके हुए दिमाग़ पर ज़ोर डालना शुरू किया, यहाँ तक कि वह उस चवन्नी को कोसने लगी जो उसे इस काम के लिए मिलती थी।

"जेंटिल मैन !" बुक्की ने नौजवान को बुलाते हुए कहा, "मैंने आप की सीट चौथी लाइन में तेरह पर रखी है और बारह पर मिस द' सोज़ा की जगह है।" बुक्की ने जान-बूझकर मिसेज़ को मिस कहा। आखिर प्रकृति ने स्त्री के माथे पर तो ऐसे भेद-भाव का कोई चिन्ह रखा नहीं। और फिर बुक्की को अपनी जवानी प्यारी थी। उसे अपनी माँ से बहुत प्यार था और अपनी बहन पर उसे बहुत तरस आता था....

नौजवान ने अपना हैट उठाते हुए कहा, "धन्यवाद !" और हाल के अन्दर चला गया।

बुक्की ने एक सिगरेट सुलगाया और फिर प्लान को ध्यान से देखने लगी। जब वह ऐश-ट्रे को अपने पास सरका रही थी तो एक कुरूप-सा लड़का आया और उसके पास खड़ा हो गया। बुक्की ग़ौर से उसके चेहरे की तरफ़ देखने लगी। वह अभी कम-उम्र था, उसकी मसें भीग रही थीं और उसके चेहरे से मालूम होता था कि वह स्त्रियों के बारे में कुछ नहीं जानता, अलबत्ता जानना चाहता था। माँ और बहन के अलावा उसने संसार में कोई स्त्री नहीं देखी थी और चेहरे पर हल्की-हल्की लज्जा के पीछे एक ज़बरदस्त डर दिखायी दे रहा था जो उसके चेहरे की भद्दी रेखाओं को और भी भद्दा बना रहा था।

लड़के ने टिकट के पैसों के अतिरिक्त एक चवन्नी बुक्की की ओर

सरका दी। बुक्की का मुँह खुला रह गया। "तुम चाहते हो कि...." वह बोली और चवन्नी को एक नज़र देखते हुए उसने जेब में रखा और फिर अपने सामने पड़े हुए प्लान पर झुक गयी। हाउस फ़ुल था, सिर्फ़ सोलह नम्बर की सीट खाली थी, वही सीट जो उसने सुन्दर युवक के लिए पहले बुक की थी, लेकिन जो साथ की सीट पर लड़की न होने के कारण ख़ाली रह गयी थी। बुक्की ने सोचा, अब वह लड़की ज़रूर आ बैठी होगी। कितनी सुन्दर थी वह लड़की—वह 'ब्लाँड' थी और उसके बालों की लहरें यों दिखायी देती थीं, जैसे धान के खेत पर से हवा सरसराती हुई गुज़र रही हो....शायद उसने बाल किसी युवक का ध्यान आकृष्ट करने के लिए बनाये थे। उसकी बग़ल में इस मूर्ख और कुरूप छोकरे को जगह देना उस लड़की का अपमान करना था। और यह छोकरा नौसिखिया ही नहीं, एकदम देहाती था। २४ परगना की तरफ़ का रहने वाला ही तो दिखायी देता था। उसके चेहरे से साफ़ ज़ाहिर था कि न तो वह छत के सितारों की प्रशंसा से बात-चीत का सिलसिला शुरू कर सकता है और न उस लड़की के बालों की धान के खेत से उपमा दे सकता है। वह गधा तो असली सितारों को पसन्द करता था और कहीं से धान काटता हुआ उठकर कलकत्ता चला आया था।

नौजवानों की एक टोली उसकी ओर बढ़ी आ रही थी, लेकिन सारी सीटें भर चुकी थीं, सारा-का-सारा प्लान बुक्की के लगाये निशानों से लाल हो रहा था। उसने हाथ के इशारे से सब को बता दिया कि इस क्लास में अब कोई जगह नहीं है। और वे नौजवान अपने ओवरकोट थामे और पतलून के पायँचे उठाये वापस चले गये।

आसमान से नन्हीं बूँदें गिरने पर सिनेमा के बरामदे शरण-स्थल

बन गये थे। इसके बाद मानसून के बड़े-बड़े रेले आने लगे और कुछ छोकरियाँ अपने गाउन सम्हालती हुई सिनेमा के 'एक्ज़िट' की ओर आ खड़ी हुईं। इन लड़कियों के रेले दरवाज़े की तरफ़ ढकेल दिये जाते थे और वर्षा के रेलों से यह रेले अधिक सुन्दर दिखायी देते थे।

इस समय बुक्की के दिल में उस देहाती नौजवान के लिए एक विचित्र मातृत्व का भाव उत्पन्न हुआ। उसने अपने कमरे के सामने 'हाउस-फ़ुल' का तख़्ता लगा दिया और खुद खिड़की बन्द करते हुए बाहर निकल आयी। उस छोकरे के काँपते हुए हाथों में टिकट दे दिया और फिर खुद उसे कंडक्टर तक ले गयी। बराबर काँपते रहने से उस छोकरे की कुरूपता सौन्दर्य में और भी वृद्धि हो गयी थी। कंडक्टर ने सावधानी से उस नौजवान को सोलह नम्बर की सीट पर बिठा दिया। बुक्की दरवाज़े में खड़ी होकर उस छोकरे और उसकी साथिन की ओर देखती रही। 'ब्लाँड' ने घबराकर अपनी दायीं ओर देखा और मज़बूती से अपनी कुर्सी के डंडों को पकड़ लिया। उस लड़की को अपनी शाम के खराब हो जाने में कोई सन्देह न रहा। बुक्की ने सोचा, शायद वह लड़की भी मेरी तरह सौन्दर्य-बोध की अपेक्षा अपनी चवन्नी या दस के नोट को पसन्द करती हो। इसके बाद पर्दे खिंच गये और सिनेमा शुरू हुआ। अँग्रेज़ी फ़िल्म—'मेरा नाम मुझसे पहले यात्रा करता है' शुरू हुई और एक मोहक ध्वनि में गाया जाने लगा।

तारों भरी रात के नीचे....

बुक्की ने एक गहरी ठंडी साँस ली और अपने दिल में 'ट्यून' को गुनगुनाने लगी—'तारों भरी रात के नीचे....' लेकिन अभी दूसरे शो का प्लान बनाना था और उसे तीन-साढ़े तीन रुपये हाथ लग चुके थे। अब तो वह बहुत ही थक गयी थी। आँखों को तेज़ रोशनी से

बचाने के लिए उसे हाल का अँधेरा पसन्द था। वह सोचने लगी—'तारों भरी रात के नीचे' का सुन्दर गान सुनकर उस कुरूप नौजवान को खूबसूरत सितारों से भरा आसमान याद आयेगा या हाल की छत या सुन्दर सीटें जहाँ रोज़ एक नया प्रयोग होता है। इसके बाद बुक्की बाहर निकल आयी। कंडक्टर जानता था कि बुक्की इसी जगह खड़ी होकर एक-दो क्षण के लिए पिक्चर देखा करती है और फिर फ़ौरन ही बेचैन होकर बाहर निकल जाती है जैसे कि रजतपट पर कोई महाभयानक दृष्य दिखाया जा रहा हो, यद्यपि ऐसी बात न थी। वह शांति से एक गाना भी न सुन सकती थी। उसे ऐसा अनुभव होता जैसे उसका हृदय-पात्र छोटा है और संगीत-मदिरा बहुत अधिक और नग़मा उसके नन्हें-हृदय में समा नहीं सकता। वह अपना छलकता हुआ दिल लेकर बाहर निकल आती और तारों भरी रात के नीचे २४ परगना के किसी गाँव का किनारा उसे याद आ जाता, जहाँ उसका प्रेम परवान चढ़ा और लुट गया, जहाँ से हिन्दू स्त्रियाँ अपना घड़ा भरकर चली आती थीं। इससे ज़्यादा जगह उनके मटकों में नहीं थीं। और उसी मटके के पानी से वे खाना भी बनाती थीं और चौका भी करती थीं। गाय के गोबर को वे मिट्टी में मिलाकर चौके को बड़ी सफ़ाई से पोता करतीं और बुक्की का जी भी चाहता कि इन बड़े-बड़े शानदार होटलों को छोड़कर किसी ऐसे अलग कोने में सुख और शांति के साथ पड़ रहे और उन्हीं स्त्रियों की भाँति चारपाई पर लेटकर रात को तारों से भरे आकाश का तमाशा देखा करे।

वह मैनेजर के कमरे के पास खड़ी होकर सिगरेट सुलगाने लगी। कुछ देर बाद हॉल में उजाला हो गया। हाफ़-टाइम हो चुका था। बुक्की ने फिर एक बार पर्दे के पीछे से सोलह नम्बर और उसके बराबर

वाली सीट की ओर देखा। वह लड़का और लड़की एक दूसरे के लिए वैसे ही अजनबी थे और अपनी-अपनी जगह पर सिमटकर बैठे थे। अगर वह छोकरा क़ायदे से उस खूबसूरत 'ट्यून' की प्रशंसा कर देता तो कितनी अच्छी बात होती! लेकिन वह तो गुम-सुम बैठा था।

अब हाफ़-टाइम में वह कोई बात शुरू कर सकता था, लेकिन वह बाहर चला आया। उसका चेहरा एकदम उतरा हुआ था। वह बार-बार आँखें झपकाता था और अपने ओठों पर बेतहाशा जीभ फेर रहा था। इन सब हरक़तों से वह बिलकुल एक देहाती गँवार मालूम होता था।

"हलो मिस—मा'म!" उसने डरते हुए कहा।

बुक्की ने मुस्कराते हुए उसकी ओर देखा और बोली, "हलो ब्वाय, एंजायड ऑलराइट (कहो, खूब मज़ा रहा न ?)"

उस लड़के ने टूटी-फूटी अँग्रेज़ी में जवाब दिया, "मा'म—मैं तो कलकत्ता देखना चाहता हूँ....और....और....।" इसके बाद वह हकलाने लगा, "मेरा चचा किदारपुर में दुकान करता है...."

बुक्की का जी चाहा कि वह स्पष्ट रूप से कह दे कि कलकत्ता बिलकुल इस हाल की छत का-सा है। लेकिन उस नौजवान ने छत को भी ग़ौर से नहीं देखा था। बुक्की भी अचानक परेशान और उदास हो गयी। उसके सिर में अधिक दर्द होने लगा। वह इस देहाती नौजवान को पसन्द करने लगी थी। वह बड़ी दयावान थी। उसके बाद जब शो खत्म हुआ तो बुक्की ने मैनेजर से छुट्टी ले ली। उस समय वह देहाती कुरूप छोकरा बाहर निकल आया। बुक्की उसके पास चली गयी—बोली :

"हलो ब्वाय!—तुम कहाँ का रहने वाला है?"

"हर्षपुर—२४ परगना का।"

"मैं जानती हूँ हर्षपुर—मैं एक बार मिस्टर रे के यहाँ एक महीना ठहरी थी।"

"रे? हाँ, हाँ," लड़के का चेहरा चमक उठा। "मैं रे को जानता हूँ। वे हमें पढ़ाते रहे हैं।"

इसके बाद कुछ देर तक खामोशी रही। फिर वह लड़का बोला, "आप इतनी कृपालु हैं—क्या मैं आपका नाम जान सकता हूँ?"

"नलिनी," बुक्की बोली, "लेकिन यहाँ सब लोग मुझे मारग्रेट कहते हैं। मिस्टर रे के बड़े भाई मेरे बाप थे। उन्हें मरे हुए दस वर्ष हो चुके हैं। उन्होंने एक एंग्लो इंडियन लड़की से शादी की। वह लड़की मेरी माँ है....और क्या तुम कलकत्ता देखना चाहता है?"

छोकरे ने सिर हिला दिया। मारग्रेट बोली, "चलो, हम कॉफ़ी की एक प्याली पियेंगे।"

और वे दोनों 'फ़रपो' की तरफ़ चल दिये। होटल के दरवाज़े पर दो बड़े-बड़े दूधिया बल्ब दूर से चन्द्रमा की भाँति दिखायी देते थे। मारग्रेट ने उनकी ओर इशारा करते हुए कहा—"दूर से असली चन्द्रमा का धोखा होता है।" नौजवान ने फ़ौरन हाँ में हाँ मिला दी। मारग्रेट इन बल्बों की तरफ़ इशारा करके कहना चाहती थी, 'बस कलकत्ता ऐसा ही है।'

फिर वे होटल में घुसे और कॉफ़ी पीने लगे। उस नौजवान के चेहरे से स्पष्ट था कि उसे कॉफ़ी का कड़वा स्वाद पसन्द नहीं है। वह गँवार शायद दूध के मटके चढ़ा जाता था। कॉफ़ी के बाद मारग्रेट ने कई चीज़ों का आर्डर दिया। लड़के को इनमें कई चीज़ों के नाम न आते थे। मारग्रेट पूछती:

"यह क्या है ?"

"नहीं मालूम।"

"सॉसेज—कहो सॉसेज।"

"सॉसेज।"

"यह क्या है ?"

"नहीं मालूम।"

"कटलेट्स—कहो कटलेट्स।"

"कटलेट्स।"

कभी वह लड़का भोलेपन से कुछ और कह देता तो मारग्रेट उसे ठीक बताती, जैसे बचपन में माँ बच्चे को नये-नये नाम लेना सिखाती है और जब वह उल्टा-सीधा नाम लेता है तो उसे ठीक बताती है। कॉफ़ी पीने और कुछ खा चुकने के बाद मारग्रेट ने पैसे निकालने के लिए जेब में हाथ डाला, लेकिन उस लड़के ने हाथ थाम लिया और अपनी जेब से पैसे निकालकर बिल पर रख दिये। मारग्रेट का विचार था कि कलकत्ता में स्त्री का बिल चुकाने की सभ्यता इस लड़के को न आती होगी, लेकिन उसने देखा कि वह यह बात तो जानता था, ऐसे ही जैसे सिनेमा में चवन्नी अधिक देकर किसी स्त्री के साथ सीट बुक करवा लेने का ढंग उसे किसी ने बता दिया था। इसी तरह स्त्री के साथ कॉफ़ी पीकर या खाना खाकर उसके पैसे चुकाने का शिष्टाचार भी उसे किसी ने सिखा दिया होगा।

मारग्रेट ने बताया—कलकत्ता बहुत सभ्य हो चुका है और सभ्यता भी अंगूर के दानों की तरह है। जब बहुत पक जाती है तो उससे मदिरा की गंध आने लगती है। और जब मारग्रेट को पता चला कि वह लड़का स्त्री के बारे में बिलकुल कुछ नहीं जानता तो उसने

उसका हाथ पकड़ते हुए कहा :

"ब्वाय ! क्या तुम आज रात को मेरे मेहमान बनोगे ?.... मैं आज अपनी माँ के पास नहीं जाऊँगी। यहाँ घर से अलहदा मेरे पास एक बहुत अच्छा फ्लैट है....मैं तुम्हें बता दूँगी औरत क्या चीज़ है। लेकिन वह औरत, जिसने तुम्हें सिनेमा के दरवाज़े पर पाया, जिसे तुमने २४ परगना में देखा, उसे तुम यहाँ नहीं पा सकोगे।....हाँ तुम उस औरत को देख लोगे, वह औरत जो कलकत्ता है !"

पॉन शॉप

बेगम बाज़ार की मनहूस दुकान में एक बार फिर बेलदार दुसूती के भारी-भारी पर्दे लटकने लगे। 'दाद चम्बल नाशक' के आविष्कारक और जापानी खिलौनों की दुकान—'ओसाका फ़ेयर' (जापान से सम्बन्धित) के नौकर ताज्जुब से थारू लाल फ़ोटोग्राफ़र को प्लाईवुड का 'डार्करूम' बनाते देखकर, उसके अंधकारमय भविष्य पर आँसू बहाने लगे।

"एक महीने से अधिक चोट न सहेगा....बेचारा!"

"दुकान क्या होगी....बाज़ार से कुछ हटकर है ना। नज़र उसे सामने नहीं पाती और बस।"

—एक महीना, दो, फिर चार....थारू लाल वहीं पर मौजूद था। 'दाद चम्बल नाशक' के आविष्कारक और 'ओसाका फ़ेयर' के नौकरों ने ताज्जुब से उँगलियाँ मुँह में डाल लीं जबकि ११ अगस्त की सुबह को उन्होंने एक जहाज़ी साइज़ का साइनबोर्ड उस मनहूस दुकान में लटकाये जाते देखा। १२×६ फ़ीट साइज़ के साइनबोर्ड पर दैत्याकार अक्षर शुद्ध कलापूर्ण ढंग से नाचते हुए 'इंटरनेशनल फ़ोटो स्टूडियो'

का रूप ले रहे थे।

'ओसाका फ़ेयर' के मैनेजर समीम (खानज़ादा) ने सेलूलाइड की एक बड़ी-सी गुड़िया के अन्दरूनी फ़ीते को उसके अन्दरूनी कुलाबों से अच्छी तरह बाँध दिया (ताकि गाहक को शिकायत का मौक़ा न मिल सके) और फिर थारू की दुकान पर टँगे हुए साइनबोर्ड को देखकर मुस्कराने लगा :

"इंटर....नेशनल फ़ोटो स्टूडियो !"

थारू का काम बेगम बाज़ार और उसके आस-पास के तीन मुहल्लों, सामने के निचले चौक या छावनी के हाई स्कूल तक ही सीमित होगा; किन्तु वह अपनी दुकान को एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था से कम नहीं देखना चाहता। क्या अजब कि उसे किसी दिन पेट्रोग्राड, टिम्बकटू या होनोलूलू से फ़ोटो का माल सप्लाई करने के आर्डर मिलने लगें....बहरहाल अंतर्राष्ट्रीय नाम रखने में हर्ज भी तो कोई नहीं। इस नाम से दुकानदार का स्वाभाविक आशावाद झलकता है।

मगर अफ़सोस ! सौदे की नवीनता प्रगतिशील भारतीय दुकानदार को बेगम बाज़ार के पास के तीन मुहल्लों, सामने के निचले चौक और छावनी के हाई स्कूल से दूर क्या जाने देगी। वह हर उचित और अनुचित ढंग से गाहक को फँसाने की कोशिश में दक्षता की तो धज्जियाँ उड़ा देता है, गोया अपने पावों में आप बेड़ियाँ डालता है। और यों अधिक आय की आशा में साधारण आय भी ग़ायब !—थारू की दुकान पर इस जहाज़ी क़द के साइनबोर्ड के नीचे एक और टीन की प्लेट पर आधुनिक चश्मे वाला भी लिखा था। प्रगतिशील किन्तु भोले-भाले थारू ने चश्मे का कारोबार सिर्फ़ नयेपन या नक़ल में शुरू किया था क्योंकि उसका पड़ोसी दुकानदार जुर्राबों के कारख़ाने के साथ टीटागढ़

कागज़ भी बेचता था।

११ अगस्त की शाम को 'ओसाका फ़ेयर' के मैनेजर समीम (खानज़ादा) और थारू कुछ उदास होकर मिले। दोनों की आय का अधिक भाग गर्मियों की छुट्टी या सरकारी दफ्तरों के शिमले की तरफ़ कूच की भेंट हो चुका था। इन दिनों में स्टूडियो के सामने पॉन शॉप पर बहुत रौनक़ रहती थी।

पॉन शॉप के पहियेदार तख्तों में खड़िया मिट्टी से साफ़ किये हुए शीशे बहुत ही खूबसूरत दिखायी देते थे। एक हल्की हरी झलक वाले शीशे के पीछे एक हुक के साथ एक सोने की सेकंडस घड़ी लटक रही थी। उसके नीचे क़ानून की कितनी ही किताबें अव्यवस्थित-सी पड़ी थीं। शायद कोई क़ानून का बेक़ानून और फ़ज़ूल-खर्च विद्यार्थी इतनी क़ीमती किताबें कौड़ियों के मोल गिरवी रखकर पैसे ले गया था। किताबों के पीछे एक पुरानी सिंगर मशीन पड़ी थी। उसे गिरवी रखने वाले को इतनी ज़रूरत या इतनी जल्दी थी कि उसने मशीन पर से धागे की गोली भी न उठायी थी।

पॉन शॉप के एक कोने में काँसे और पीतल के फ़िलिस्तीनी प्यालों की शक्ल के गुलदस्ते और लम्बी-लम्बी टाँगों वाले कलिंग पड़े थे। फर्नीचर की दो पंक्तियों में अखरोट की लकड़ी में कश्मीरी तराश का एक बड़ा-सा गणेश भी पड़ा हुआ था और दीवार के साथ पॉन शॉप का मालिक एक लोहे की संदूक़ची पर अपनी कुहनियाँ रखे हुए अपने किसी गाहक से बातें कर रहा था।

दो बे-वर्दी सिपाही पॉन शॉप के मालिक से अनुमति लेकर बरामदे में पड़ी हुई साइकिलों के नम्बर देख रहे थे।

"ए-११७८५—नहीं।"

"ए-२२२३१२—यह भी नहीं।"

"एच-६७४०१—यह भी नहीं। कोई भी नहीं। चलो।"

एक ईसाई लड़की दो-बार बेगम बाज़ार में पॉन शॉप से निचले चौक और निचले चौक से पॉन शॉप की तरफ़ वापस आयी। वह बार-बार ग़ौर से पॉन शॉप के अन्दर देखती। उस समय उसके दबे हुए कन्धे फड़कने लगते। शायद वह चाहती थी कि पॉन शॉप के अन्दर बैठे हुए दो-एक लोग चले जायें और सिपाही अपना काम करके विदा लें तो वह अकेले में आज़ादी से अपना कारबार कर सके या शायद वह अपना माल गिरवी रखते हुए झिझकती थी....यद्यपि उसके पास गिरवी रखने के लिए कोई चीज़ न दिखायी देती थी....किंचित सुन्दर काट के उसके ओठ फड़कते दिखायी देते थे और उसकी निंदासी और भारी आँखें पपोटों में बेचैन थीं। पसीने से सफ़ेद मलमल का फ़ाक उसकी पीठ से चिपक गया था और पीठ की ओर से उसकी अंगिया के रेशमी फ़ीते कन्धों पर गोल चक्कर काटते हुए साफ़ दिखायी दे रहे थे।

"आज बहुत गर्मी है—तौबा!—शाम को ज़रूर बारिश होगी," 'ओसाका फ़ेयर' के मैनेजर ने कानों को छूते हुए कहा।

थारू ने यह बात न सुनी और बड़ी लगन से पॉन शॉप के अन्दर देखता रहा। फिर अचानक काँपते हुए बोला :

"इस से तो मैं भूखा मर जाना पसन्द करता हूँ।"

समीम ने ग़ौर से पॉन शॉप के अन्दर देखा और बोला :

"ज़रूरत मजबूर करती है मेरे भाई! वरना कोई खुशी से थोड़े ही...."

लड़की पॉन शॉप से बाहर आयी। उसके चेहरे से स्पष्ट था कि गिरवी माल पर उसे अनुमान और आवश्यकता से बहुत ही कम रुपया

मिला था, नहीं तो सन्तोष और प्रसन्नता की लहरें उसके चेहरे पर ज़रूर दिखायी देतीं....वह अपने बीमार पति पर सब कुछ लुटा चुकी थी। अब उसके पास सुनहरी बालों के सिवा गिरवी रखने के लिए रहा भी क्या था। काश, इन घुँघराले लम्बे सुनहरे केशों की भारत में कुछ क़ीमत होती!

लड़की ने अपना दायाँ हाथ ऊपर उठाकर एक उँगली को जड़ से मसलना शुरू किया। उँगली पर एक पीला-सा गोला दिखायी दे रहा था। न जाने किस ज़रूरत से मजबूर होकर उसने अपनी सब से प्रिय वस्तु अपने सुखी प्रेममय जीवन की आखिरी निशानी पॉन शॉप में गिरवी रख दी थी। उसने अपने रँडवे हाथ से अपने सुनहरे केशों को बड़ी उपेक्षा से पीछे हटा दिया क्योंकि उनकी कोई क़ीमत न थी। और पॉन शॉप के पहियेदार तख़्तों में खड़िया मिट्टी से साफ़ किये हुए खूबसूरत शीशों में उसने अपने सुन्दर चेहरे के धुँधले प्रतिबिम्ब को देखा और रोने लगी....क्योंकि वह रूप नहीं बेचती थी।

*

लोहे की एक खुर्दबीन जैसी नाल में थारू क्रुक्स के कुछ हल्के-से लेंस डालकर आध घंटे के लगभग एक बूढ़े की आँखों का निरीक्षण करता रहा। बूढ़े के सामने एक ताक़ के साथ उर्दू वर्णमाला के अक्षर टँगे थे।

थारू बार-बार उस नाल की दराज़ में किसी नये और हल्के-से लेंस को रख देता। बूढ़ा कहता: "अब 'मीम' तुम्हारे कोट से भी बड़ी दिखायी दे रही है।"

"अब 'ज़ोय' से किरणें निकल रही हैं।"

"अब 'ऐन' धुँधली-धुँधली और परछाईंदार दिखायी देती है।"

"अब सब अक्षर दिखाय तो ठीक देते हैं—मगर बहुत ही छोटे-छोटे....तुम्हारे कोट के बटन से भी छोटे।"

वह बूढ़ा क्या जाने कि अगर किसी लेंस में से सारे अक्षर अपने ठीक आकार में दिखायी देने लगें तो भी वह थारू लाल—आधुनिक चश्मे वाले और फ़ोटोग्राफ़र—से एक सुन्दर सेलूलाइड के फ्रेम का चश्मा लगवाकर हमेशा के लिए अंधा हो जायगा।

डेढ़ घंटे की 'साइंटिफ़िक' देख-भाल के बाद थारू ने शीशे का नम्बर एक काग़ज़ पर लिखा और ऐनक बूढ़े को दे दी।

बूढ़ा उन अमीर गाहकों में से नहीं था जो थोड़े पैसे देने के लिए भी पहली का वादा करते हैं। पैसे उसकी मुट्ठी में थे। थारू लाल के माँगने पर उसने कुछ पसीने से शराबोर सिक्के काउँटर पर बिखेर दिये। इन सिक्कों के देखने से घिन आती थी। थारू ने लालची की तरह सिक्के उठाकर अपनी जेब में डाल लिये और अपना हाथ पतलून से पोंछने लगा।

थारू ने गर्व से पॉन शॉप की ओर देखा। एक अधेड़ उम्र का शरीफ़ आदमी जिसका मुँह कान तक तमतमा रहा था, धीरे-धीरे पॉन शॉप के सामने की तीन सीढ़ियों से नीचे उतर रहा था। नीचे उतरते हुए उसने पॉन शॉप के पहियेदार तख़्तों में खड़िया मिट्टी से साफ़ किये हुए शीशों में अपने शिष्ट चेहरे के धुँधले प्रतिबिम्ब को देखा और उदास हो गया—क्योंकि वह बदमाश नहीं था।

"पॉन शॉप का मालिक चार दिन में भी इतना सूद जमा नहीं कर सकता," थारू ने अपनी जेब के सिक्कों को खनखनाते हुए कहा।

फिर थारू एक बेकार से गर्व की भावना के साथ आस-पास के दुकानदारों की आमदनी का अन्दाज़ा लगाने लगा।

इस बेकार के जमा-खर्च में बेगम बाज़ार के बिसातियों की आमदनी का कोई दखल नहीं था। उनकी आमदनी असीम थी और थारू की सीमित कल्पना से बहुत परे थी।

"हाँ, 'दाद चम्बल नाशक' के आविष्कारक के नुस्खे की क़ीमत ज़्यादा-से-ज़्यादा दो आने होगी। गंधक, राल, सुहागा, फिटकिरी एक-एक हिस्सा और नीला थोथा ½ हिस्सा और एक अज्ञात वस्तु जो इस नुस्खे की सफलता की कुंजी है और जिसने इस अत्तार को आविष्कारक बना दिया है, वह भी एक-आध पैसे में आ जाती होगी। इसमें वह कमाता क्या है। 'ओसाका फ़ेयर' के मैनेजर को कमीशन बट्टे के आधार पर मिलता ही क्या होगा। हेयर कटिंग सेलून वाले फ़ी हजामत चार आने....पाँच आने कमा लेते होंगे....।" थारू ने एक बार फिर चमकती हुई आँखों से पॉन शॉप की ओर देखा।

—उसकी पतलून की जेब में पसीने से शराबोर सिक्के उसकी रानों को गीले-गीले लगने लगे।

उस समय 'ओसाका फ़ेयर' का मैनेजर आया।

हफ़्ते भर उसकी दुकान पर परचून के कुछ गाहकों के अलावा और कोई न आया था। दशहरा, शबे-बरात या दीवाली में अभी ढाई-तीन महीने बाक़ी थे। क्या 'ओसाका' का बड़ा दफ़्तर अक्तूबर तक प्रतीक्षा करेगा? समीम (खानज़ादा) का चेहरा कुछ काला पड़ गया था और पिछले एक-डेढ़ हफ़्ते ही में उसके इतना बूढ़ा दिखायी देने का कोई विशेष कारण था।

समीम ने अपने आपको आराम कुर्सी पर गिरा दिया। थारू बोला:

"यह पॉन शॉप का काम....हमारे कामों से एक ही साथ अच्छा भी है और बुरा भी।"

"अच्छा कैसे ?"

"आमदनी—हम क्रुक्स के चश्मे और फ्रेम खरीदते हैं। तस्वीरें लेने के लिए नेगेटिव प्लेटें और पॉज़ीटिव काग़ज़ लाते हैं। कभी-कभी हमारा नुक़सान भी हो जाता है। पॉन शॉप में पल्ले से क्या ख़र्च करना पड़ता है ? अगर कोई अवधि के बाद ली हुई रक़म से तिगुनी रक़म की चीज़ छुड़ाने न आ सके तो सब कुछ अपना....और एक बड़ा-सा डकार।"

"बुरा कैसे ?"

"बुरा ? बुरा—इसमें धोखे का खतरा है। यह लोग दूसरे का माल अपने पास गिरवी रखते हुए और बग़ैर महसूस किये हुए अपनी अन्तरात्मा गाहक के सामने गिरवी रख देते हैं। और यहाँ से कभी-कभी कोई सुन्दर लड़की अपने प्रेम-भरे जीवन की सबसे प्रिय और आखिरी निशानी देकर दुख पूर्वक अपने रंडुवे हाथ को मसलती हुई चली जाती है। अगर हमारे यहाँ सुनहरे बालों की कोई क़ीमत हो तो यह लालची आदमी उनको भी गिरवी रख लिया करें। अगर किसी शरीफ़ अधेड़ उम्र के आदमी की शराफ़त बिकाऊ हो....तो ये लोग उसे भी गिरवी रखने से बाज़ न आयें।"

और थारू मुस्कराकर गर्व से सिक्के अपनी जेब में उछालने लगा।

दो घंटे से थारू ने कुछ नेगेटिव प्लेटें बर्फ़ीले पानी में डाल रखी थीं। अब वह उनसे पॉज़ीटिव काग़ज़ पर तस्वीर उतारना चाहता था। उसने पानी में हाथ डालकर देखा। पानी गर्म हो चुका था और नेगेटिव प्लेटों पर मसाला पिघलकर लावा की तरह हो गया था। थारू के रोंगटे खड़े हो गये।

वह कुछ न बोला....वह कुछ बोल ही न सका।

यह उसे छः रुपये का नुक़सान था—एक ऐनक की बचत से तीन गुना अधिक नुक़सान !

थारू एक अंगड़ाई लेकर समीम के पास बैठ गया। उसे यों महसूस हुआ जैसे एक क्षण में उसकी शक्ति उसके बदन से खींच ली गयी हो। थारू टकटकी बाँधे पॉन शॉप की तरफ़ देखने लगा। शीशे के पीछे सोने की सेकंडस क़ानून की किताबों पर लटक रही थी। एक कोने में काँसे और पीतल के फ़िलिस्तीनी प्यालों की शक्ल के गुलदस्ते और लम्बी-लम्बी टाँगों वाले कलिंग पड़े थे। फ़र्नीचर की दो पंक्तियों में अखरोट की लकड़ी में कश्मीरी तराश का एक बड़ा-सा गणेश भी दिखायी दे रहा था और एक दीवार के साथ पॉन शॉप का मालिक एक लोहे की सेफ़ पर अपनी कोहनियाँ रखे.......।

*

ओक प्लाई के 'डार्क रूम' में दम घुट जाने पर थारू ने एक गहरी साँस ली और फिर पॉज़ीटिव काग़ज़ पर नक्श को स्थिर करने वाले सॉल्यूशन को हिलाता रहा। उस समय पसीना उसकी कमर से होकर घुटनों के पीछे बूँद-बूँद टपक रहा था।

शायद थारू ओक प्लाई के डार्क रूम में पिघलकर अपनी जान दे देता अगर समीम 'ओसाका फ़ेयर' को बन्द करते हुए इधर न आ निकलता। थारू ने समीम की आवाज़ पर बाहर आते हुए धीरे-धीरे अपनी क़मीज़ उतार दी, उस में से पसीना निचोड़ा और क़मीज़ को पानी के टब में डाल दिया। और हाँफते हुए बोला :

"आजकल ईमानदारी के काम में पड़ा ही क्या है ?...."

और अंतर्राष्ट्रीय कारबार के इच्छुक थारू ने एक फटी हुई बनियान

धीरे-धीरे सिर से नीचे उतार ली।

पानी के टब में थारू की क़मीज़ की जेब में से काग़ज़ का एक टुकड़ा निकलकर पानी पर तैरने लगा। उस पर लिखा था, "तीन आने का सॉल्यूशन, दो आने यूनियन का चन्दा, एक पैसे की गंडेरियाँ—कुल सवा पाँच आने।"

थारू बोला, "यह मेरी सारे दिन की आय और ख़र्च का हिसाब है। तुम मुझे कुँआरा देखकर मज़ाक़ करते हो....ब्याह....मुहब्बत कितनी मीठी चीज़ है। मगर खाली पेट में तो पानी-सी न्यामत भी जाकर तड़पा देती है।"

'ओसाका फ़ेयर' का मैनेजर चुप बैठा थारू के उदास-दुखी चेहरे की टेढ़ी-मेढ़ी शिकनों को देखता रहा और बोला :

"तुम ठीक कहते हो भाई....ईमानदारी के काम में पड़ा ही क्या है....ओसाका से चिट्ठी आयी है, अगर छः महीने के अन्दर स्टेटमेंट में आमदनी की मद भारी या कम-से-कम सन्तोषजनक न दिखायी दी तो यह दुकान दिल्ली के दफ़्तर से मिला दी जायेगी।"

कुछ क्षणों के लिए दोनों चुप रहे। फिर थारू बोला :

"पॉन शॉप का मालिक दस से लेकर साढ़े बारह प्रतिशत तक फ़र्नीचर पर दिये हुए रुपयों में से काट लेता है। आम तौर पर नेशनल बैंक वाले पासे के सोने पर एक पैसा फ़ी रुपया ब्याज लेते हैं। मगर इधर देखो समीम, तस्वीर की तरफ़ मत देखो। तुम्हें वह लड़की याद है न, जिसने मजबूरी और दुख के साथ अपनी सब से प्रिय वस्तु पॉन शॉप के मालिक को दे दी थी....उस अँगूठी की क़ीमत अस्सी रुपये थी।"

खानज़ादा उछल पड़ा....थारू बोला :

"पॉन शॉप के मालिक ने खुद मुझे बताया है....उसकी क़ीमत उसने तीस रुपये डाली....सिर्फ़ तीस....मैं सच कहता हूँ तीस रुपये, और एक आना फ़ी रुपया सूद लगाया। मीयाद ३१ अगस्त है, पहली भी नहीं....इसके बाद वह अँगूठी इसी लुटेरे और हिंसक पशु की हो जायगी।

एक चीथड़े से किसी तस्वीर के पीछे के भाग पर से कबूतरों की बीट को साफ़ करते हुए थारू बोला :

"मेरी जेब में कच्ची कौड़ी भी नहीं....दुकान में न नेगेटिव प्लेटें हैं, न पॉज़ीटिव काग़ज़, २०० कैंडिल पावर का एक बल्ब भी फ़्यूज़ हो गया है। मैं काम कैसे कर सकता हूँ ?"

ख़ानज़ादा ने 'ओसाका' से आयी हुई चिट्ठी जेब से निकाली और शायद दसवीं बार पढ़ने लगा।

कुछ देर विचार-मग्न रहने के बाद थारू ने तस्वीर और चीथड़े को मेज़ पर रख दिया और बोला :

"बेगम बाज़ार की मनहूस दुकान फिर अपनी दुखभरी कहानी दोहरायेगी....शीघ्र ही खाली हो जायेगी। इंटरनेशनल फ़ोटो स्टूडियो का काम पेट्रोग्राड, टिम्बकटू या होनोलूलू तक फैलना तो एक तरफ़ रहा, वह तो बेगम बाज़ार के निचले चौक तक भी नहीं पहुँच सका है....और क्या भाई....आजकल ईमानदारी के काम में रखा ही क्या है....।"

समीम ने सिर उठाकर देखा। सामने थारू खड़ा था, थारू जिसका शरीर और आत्मा कहीं और पहुँच चुके थे।

*

पॉन शॉप का मालिक और थारू स्थानीय कॉटन मिल के हड़ताली

मज़दूरों का प्रदर्शन देख रहे थे। अचानक पॉन शॉप के मालिक ने थारू को अन्दर ले जाकर एक छोटा-सा काग़ज़ सामने रख दिया।

थारू का चेहरा कान तक तमतमा उठा। उसकी आँखों में खून के आँसू उतर आये। हकलाते हुए उसने कहा :

"दस प्रतिशत ? द....द....स प्रतिशत तो बहुत है।"

"तुम्हें यह खास रियायत है....वरना बारह से कम नहीं।"

"तुम कैमरे को फ़र्नीचर में क्यों गिनते हो ?"

"और वह ज़ेवरों में भी तो नहीं गिना जा सकता।"

थारू लाल ने फिर एक दफ़ा काग़ज़ पर नज़र डाली और अपनी जलती हुई आँखों को ऊपर उठाते हुए कहा :

"३१ अगस्त को नहीं....तुम मुझे लूटना चाहते हो....पहली की शाम तक, बाबू लोग पहली ही को पैसे देते हैं।"

"बात सिर्फ़ यह है कि ३१ अगस्त की रात को मैं शिमला जा रहा हूँ, वरना पहली हो जाती तो क्या परवाह थी....साधारणतः इस मामले में हमें गाहकों की इच्छा का ध्यान रहता है....मगर....।"

स्थानीय कॉटन मिल के हड़ताली मज़दूरों की भीड़ को चीरते हुए एक व्यक्ति बाहर निकला। उँगली से माथे पर का पसीना पोंछते हुए उसने पॉन टिकट निकाला, बयालीस रुपये पॉन शॉप के मालिक की मेज़ पर रख दिये और सिंगर मशीन छुड़ाकर इस तेज़ी से भागा कि धागे की गोली दुकान में गिरकर उसके पीछे-पीछे घिसटती हुई दरवाज़े की एक दरार में टूट गयी।

थारू ने काँपते हुए हाथों से काग़ज़ पर हस्ताक्षर कर दिये। पॉन शॉप के मालिक ने एक डिबिया को खोलते और बन्द करते हुए कहा :

"एक गवाही भी डलवा दो न....खी खी....रस्मी तौर पर ज़रूरी

होती है न !....खी खी....'ओसाका फ़ेयर' के मैनेजर को ले आओ ।"

थारू के हाथ और भी काँपने लगे। वह भी समीम की तरह बूढ़ा दिखायी देने लगा। थारू खाँसते हुए बोला :

"मगर मैं समीम के सामने रुपया लेना नहीं चाहता ।"

पॉन शॉप का मालिक नाटकीय ढंग से हँसने लगा। हँसते हुए उसने सामने लटकते हुए झूमरों की तरफ़ इशारा किया और बोला :

"वे समीम की बीवी के हैं।"

अब थारू ने जाना कि क्यों समीम एक ही हफ़्ते में बूढ़ा दिखायी देने लगा था। उसने चुपके से सनद पर दस्तखत कर दिये, पॉन टिकट हाथ में लिया और किसी दूसरे दुकानदार की गवाही डलवा दी।

फिर वह पॉन शॉप के पहियेदार तख़्तों में खड़िया मिट्टी से साफ़ किये हुए खूबसूरत शीशों में अपने बूढ़े और ईमानदार चेहरे के धुँधले प्रतिबिम्ब को देखते हुए पॉन शॉप की सीढ़ियों से उतरा। उसकी आँखें भीग गयीं—क्योंकि वह ईमान बेचने वाला और बदमाश नहीं था।

३१ अगस्त तक थारू सूखकर काँटा हो गया। वह उसी रस्सी की भाँति हो गया था जो जल जाने के बाद भी वैसी ही सूरत रखती है। उसे किसी तरफ़ से आमदनी की सूरत न दिखायी देती थी। उसे ऐसी बेहोशी-सी आने लगी जब कि आदमी निराश होकर आकाश की तरफ़ सिर उठा देता है....ईमानदार की सहायता भगवान करता है....ईमान की कमाई....ईमान की कमाई में बरकत....ईमान....लॉनत....!

'ओसाका फ़ेयर' का मैनेजर थारू के पास आया। निराशापूर्वक उसने अपने आपको एक कुर्सी पर गिरा दिया और बोला :

"पॉन शॉप....में एक कैमरा दिखायी देता है।"

थारू ने लज्जित होकर सिर उठाया और एक गहरी दृष्टि से पॉन

शॉप में देखते हुए बोला :

"हाँ—दिखायी देता है....और झूमरों की एक जोड़ी भी...."

खानज़ादे ने ठंडी साँस भरते हुए कहा, "कितनी मीयाद है ?"

"३१ अगस्त....और तुम्हारी ?"

"३१ अगस्त !"

"कोई सबील ?"

"कोई नहीं....और तुम्हारी ?"

"ऊँ हूँ !"

और दोनों ने ठंडी साँस भरते हुए सिर झुका लिये।

तुलादान

धोबी के घर कहीं गोरा-चिट्टा छोकरा पैदा हो जाय तो उसका नाम बाबू रख देते हैं। साधुराम के घर बाबू ने जन्म लिया और यह केवल बाबू के रंग-रूप पर ही निर्भर नहीं था। जब वह बड़ा हुआ तो उसकी सब आदतें बाबुओं जैसी थीं। माँ को घृणा से 'ए थू' और बाप को 'चल बे' कहना उसने न जाने कहाँ से सीख लिया था—वह उसकी अभिमान से भरी हुई आवाज़, फूँक-फूँककर पाँव रखना, जूतों समेत चौके में चले जाना, दूध के साथ मलाई न खाना, सभी स्वभाव बाबुओं वाले ही तो थे और जब वह अपने अधिकार-भाव से बोलता और 'चल बे' कहता तो साधुराम....'खी खी बिलकुल बाबू' कहकर अपने पीले-पीले दाँत निकाल देता और चुप हो जाता।

'बाबू' जब सुखनन्दन, अमृत तथा अन्य धनी बालकों में खेलता तो किसी को भी मालूम न होता कि यह उस माला का मनका नहीं है, सच तो यह है कि ईश्वर ने सब जीव-जन्तुओं को नंगा करके इस दुनिया में भेज दिया है, कोई बोली-ठोली नहीं दी। यह निर्धन, यह लखपति, महाब्राह्मण, भनोट, हरिजन, लिगुआ-फ्रैंका—सब कुछ बाद

में ही लोगों ने स्वयं ईजाद किया है।

बघई के पुरवा में सुखनन्दन के माँ-बाप खाते-पीते आदमी थे और साधुराम तथा दूसरे आदमी उन्हें खाते-पीते देखने वाले....। सुखनन्दन का जन्म-दिन आया तो पुरवा के बड़े-बड़े नेता गगनदेव भंडारी, डालचन्द, गनपत महाब्राह्मण आदि भोज पर निमंत्रित किये गये। डालचन्द और गनपत महाब्राह्मण दोनों मोटे आदमी थे और प्रायः प्रत्येक भोज में देखे जाते थे। उनकी उभरी हुई तोंद के नीचे पतली-सी धोती पर लंगोट, भारी भरकम शरीर का हल्का-सा जनेऊ, लम्बी चोटी, चन्दन का टीका देखकर बाबू जलता था। भला यह भी कोई जलने की बात थी? सम्भवतः एक नन्हा-सा कोमल बदन बाबू बनने के बाद इंसान एक भद्दा और बेडौल-सा पंडित बनना चाहता है— और पंडित बनने के बाद एक नीचात्मा, अपराधी और अछूत....। डालचन्द और गनपत महाब्राह्मण के चरित्र के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें प्रसिद्ध थीं—यह मानव प्रकृति की विलक्षणता हर जगह करिश्मे दिखाती है।

बाबू ने देखा, जहाँ भंडारी और महाब्राह्मण भनोट सब आये हुए थे वहाँ उमदाँ मीरासन, हरखू, जड़ई दादा, कारिन्दे और दो-तीन जूठी पत्तलें और दोने उठाने वाले महरे भी दिखायी दे रहे थे। जब दस-पन्द्रह आदमी खाने से फारिग़ हो जाते तो महरे पत्तलों और दोनों से बची-खुची चीज़ें एक जगह एकत्रित करते। जमादारनी एक जगह चादर का पल्ला बिछाये बैठी थी। महरे वे सब बची-खुची चीज़ें—हलवा, दाल, तोड़े हुए ग्रास, पकौड़ियाँ मिले हुए आलू, मटर और चावल उस बिछी हुई चादर या एल्मोनियम के एक बड़े से ज़ंग लगे हुए तसले में डाल देते। उसके सामने सब चीज़ें खिचड़ी देखकर बाबू न

रह सका, बोला—

"जमादारनी—कैसे खाओगी यह सब चीज़ें ?"

"जमादारनी हँस पड़ी, नाक सिकोड़ती हुई बोली : "जैसे तुम रोटी खाते हो।"

इस अद्भुत और सरल से उत्तर से बाबू के अभिमान को ठेस लगी, बोला :

"कितनी नासमझ हो तुम....इतनी-सी बात न समझी तभी तो तुम लोग जूतों में बैठने के योग्य हो।"

हलालखोरी की अकड़ प्रसिद्ध है। माथे पर तेवर डालती हुई जमादारनी बोली :

"और तुम तो आकाश पर बैठने योग्य हो....है न ?"

"ऐसे ही गुसा गयीं तुम तो," बाबू बोला, "मेरा मतलब था, सब्ज़ी में हलवा, पकौड़ियों में आलू, मटर, पुलाव में फिरनी, यह सब चीज़ें खिचड़ी नहीं बन गयीं क्या ?"

जमादारनी ने कोई उत्तर न दिया।

भंडारी और महाब्राह्मण को अच्छे स्थान पर बैठाया गया। वे साधुओं की भाँति रुद्राक्ष की माला गले में डाले कनखियों से बार-बार उमदाँ और जमादारनी की ओर देखते रहे। उमदाँ जमादारनी के समीप ही बैठी थी, हरखू, जड़ई दादा धूप में बैठे हुए खाते-पीते आदमियों को देख रहे थे। कब वे सब खा चुकें तो उन्हें भी कुछ प्राप्त हो। बाबू ने देखा उमदाँ के निकट ही ईंधन की ओट में उसकी अपनी माँ बैठी थी—उसके पास ही बर्तन मलने के लिए राख और अधजले उपले पड़े थे और राख से उसका लहँगा खराब हो रहा था, क़मीज़ भी ख़राब हो रही थी, चलो क़मीज़ की तो कोई बात नहीं थी, वह तो

किसी की थी और धुलने के लिए आयी थी। एक बार बाबू की माँ ने पहन ली तो क्या हुआ, परमात्मा भला करे बादलों का कि इन्हीं की कृपा से ऐसा अवसर प्राप्त हुआ।

जब अपने मित्र सुखनन्दन को मिलने के लिए बाबू ने आगे बढ़ना चाहा तो एक पुरुष ने उसे चपत दिखाकर वहीं रोक दिया और कहा, "खबरदार धोबी के बच्चे....देखता नहीं किधर जा रहा है।" बाबू थम गया, सोचने लगा कि उसके साथ लड़े या न लड़े। महरे का बलवान शरीर देखकर दब गया और वैसे भी वह अभी बच्चा था। भला इतने बड़े आदमी का क्या मुक़ाबिला कर सकता था। उसने एक उदास उचटती हुई दृष्टि से अच्छे स्थान पर बैठकर भोजन करने वालों और अधजले उपलों की राख और जूतों में पड़े हुए मनुष्यों को देखा और दिल में कहा, 'यद्यपि सब नंगे पैदा हुए हैं, पर एक सेवक और ब्राह्मण में कितना अंतर है?'

फिर मन में कहने लगा, सुखनंदन और बाबू में कितना अंतर है और हल्की-सी एक टीस उसके कलेजे में उठी। सत्य तो बाबू के सामने था, लेकिन इतनी कुरूप शक्ल में कि वह स्वयं उसे देखने से घबराता था। बाबू मन-ही-मन कहने लगा, हम लोगों के अस्तित्व ही से तो यह लोग जीते हैं, दिन की तरह उजले-उजले वस्त्र पहनते हैं....वास्तव में बाबू को भूख लग रही थी—पकौड़ियाँ, हलवे-पूरी के ध्यान में इस कुरूप सत्य से तो क्या, वह अपने अस्तित्व से भी बेख़बर हो गया। गर्म-गर्म पूरियों की विचलित कर देने वाली सुगन्धि उसके मस्तिष्क में बसी जा रही थी, एकाएक उसकी नज़र उमदाँ पर पड़ी। उमदाँ की दृष्टि भी टोकरी में घी में बसी हुई पूरियों के साथ-साथ जाती थी। जब सुखनन्दन की माँ पास से निकली तो उसका ध्यान आकृष्ट करने के लिए उमदाँ

बोली :

"जजमानी....तनिक हलवाई को डाँटो तो....ऐ देखती नहीं कितना घी बह रहा है जमीन (ज़मीन) पर।"

जजमानी कड़ककर बोली :

"अरे ओ किशनू....हलवाई को कहना, ज़रा पूरियाँ कड़ाही में दबाये रखे।"

बाबू हँसने लगा, उमदाँ कुछ लज्जित-सी हो गयी। बाबू जानता था कि उमदाँ यह सब बातें केवल इसलिए कह रही है कि उसका अपना जी पूरियाँ खाने को बहुत चाहता है। यद्यपि जजमानी का ध्यान आकृष्ट करने वाले वाक्य से उसकी इच्छा का पता नहीं चलता, वह चकित था और सोच रहा था कि जिस प्रकार उसने उमदाँ के उन असम्बन्धित शब्दों में छिपे हुए वास्तविक अर्थ को पा लिया है, क्या ऐसा भी सम्भव है कि उसके मौन में कोई उसकी बात को पा ले, आखिर मौन भी तो वार्तालाप से अधिक सार्थक होता है।

उस समय सुखनन्दन तुल रहा था—सुन्दर तुला के पलड़े में बैठा चारों ओर देखकर मुस्कराता जा रहा था। दूसरी ओर गेहूँ का ढेर लगा था, गेहूँ के अतिरिक्त बासमती चावल, चने, उड़द, मोटे माश और दूसरे इसी प्रकार के अन्न भी वहाँ थे। सुखनन्दन को तोल-तोलकर लोगों में वह अन्न बाँटा जा रहा था, बाबू की माँ ने भी पल्ला बिछाया, उसे गेहूँ की धड़ी मिल गयी, वह सुखनन्दन की चिर आयु के लिए प्रार्थना करती हुई उठ बैठी। बाबू ने घृणा से अपनी माँ की ओर देखा—जैसे कह रहा हो, तुम्हें कपड़ों की धुलाई पर सन्तोष नहीं, तभी तो हर एक की मैल निकालने का काम ईश्वर ने तुम्हारे सपुर्द कर दिया है और तुम भी जमादारनी की तरह जूतों में बैठने योग्य हो।

तुम्हारी कोख से जन्म लेने वाले बाबू को कड़कती धूप में खड़ा होना पड़ता है, आगे बढ़ने पर लोग उसे चपत दिखाते हैं, हाय ! तेरी यह फटी हुई असन्तोषी आँखें गेहूँ से नहीं, श्मशान की राख से भरेंगी—पास से माँ निकली तो बाबू बोला, "ए यू !"

फिर बाबू सोचने लगा, राम जाने मेरा जन्म-दिन क्यों नहीं आता। मेरी माँ मुझे कभी नहीं तोलती....जब सुखनन्दन को उसके जन्म-दिन के अवसर पर तोलकर अन्नदान किया जाता है तो उसके सभी दुख टल जाते हैं। उसे सर्दियों में बर्फ़ से भी अधिक शीतल जल और गर्मियों में खोपड़ी जला देने वाली धूप में खड़ा नहीं होना पड़ता। बालों में लगाने के लिए खास लखनऊ से मँगवाया हुआ आँवले का तेल मिलता है। जेब पैसों से भरी रहती है। इसके विपरीत मैं सारा दिन साबुन के झाग बनाता रहता हूँ। सुखनन्दन इसीलिए बुलबुलों को पसन्द करता है कि वे बुलबुले और उनमें चमकने वाले सात रंग उसे नित्य नहीं देखने पड़ते। इस प्रकार कपड़े नहीं धोने पड़ते....सुखी की दुनिया को कितनी ज़रूरत है—विशेषकर उसके माता-पिता को। मेरे माता-पिता को मेरी ज़रा भी ज़रूरत नहीं, नहीं तो वे मुझे भी जन्म-दिन के अवसर पर इसी प्रकार से तोलते और जब से नन्ही पैदा हो गयी है....चुड़ैल, डायन ! उसी दिन से मेरी चाय की एक प्याली भी बन्द हो गयी है....। कहते हैं बिना ज़रूरत दुनिया में कोई भी पैदा नहीं हुआ। यह बाथू जो नाली के किनारे उग रहा है देखने को व्यर्थ-सा पौधा है, जब इसकी भजिया बनती है, तो मज़ा ही तो आ जाता है....और ये पूरियाँ....

बाबू की माँ ने आवाज़ दी—

"बाबू....अरे ओ बाबू !"

उस समय सुखनन्दन बाबू को देखकर मुस्करा रहा था—अब बाबू को आशा बँधी कि वह खूब ज़ियाफ़त उड़ा सकेगा। बाबू उस चुभने वाली धूप को भी भूल गया था जो वर्षा के बाद थोड़े समय के लिए निकलती है और उसी थोड़े से समय में अपनी सब तपन ख़त्म कर देना चाहती है। उसने माँ की आवाज़ पर कान न धरा, और कान धरता भी क्यों? माँ को उसकी क्या ज़रूरत थी, ज़रूरत होती तो उसका जन्म-दिन न मनाती, वह तो शायद उस दिन को कोसती होगी जिस दिन वह पैदा हो गया....यद्यपि बाथू की भजिया बड़ी स्वादु होती है।

"बाबू....अरे बाबू के बच्चे, आता क्यों नहीं?"

बाबू की माँ की आवाज़ आयी।

"बाबू जाओ....अभी मैं नहीं आ सकता।" सुखनन्दन ने कहा, और फिर वह बड़े गर्व से अपने सिल्मे-सितारे से कढ़े कोट और बाबू की ओर देखता हुआ बोला :

"कल आना भाई....देखते नहीं, आज मुझे फ़ुरसत है? जाओ।"

उमदाँ को पूरियाँ मिल गयी थीं। वह 'जजमानी' को फ़र्शी सलाम कर रही थी। बाबू ने सोचा था कि शायद मुस्कराता हुआ सुखनन्दन उसके मौन में उसके मन की बात पा लेगा, किन्तु सुखनन्दन को आज बाबू का खयाल कहाँ आता था। आज हर छोटे-बड़े को सुखी की ज़रूरत थी, लेकिन सुखी को किसी की ज़रूरत न थी। अपनी मान-प्रतिष्ठा और बहुमूल्य वस्त्रों की तुलना में बाबू के सीधे-सादे और फटे टाट-के-से कपड़ों को देखकर शायद वह उससे घृणा करने लगा था। अपनी व्यस्तता प्रकट करते हुए उसने मानो बाबू के रहे-सहे अभिमान को मिट्टी में मिला दिया था। फिर बाबू की माँ की कर्कश आवाज़

आयी :

"बाबू........तेरा सत्यानास ! तून (ताऊन) मारे........घुस जाय तेरे पेट में काली माता........आता क्यों नहीं ? दो सौ कपड़े पड़े हैं ....लम्बर गेरने वाले........मैं तो रो रही हूँ तेरी जान को........"

बाबू को लगा कि न केवल सुखनन्दन ने उसकी भावनाओं को ठेस पहुँचायी है (और वह उसके साथ कभी नहीं खेलेगा) बल्कि उसकी माँ, जिसकी कोख से वह व्यर्थ ही पैदा हुआ था—वही औरत जिससे उसे दुनिया में सब से ज़्यादा प्यार की आशा थी—वह भी उससे बुरा व्यवहार करती है ! 'काश, मैं इस दुनिया में पैदा ही न होता !' उसने सोचा, 'अगर होता तो यों बाबू न होता। मेरी मिट्टी यों खराब न होती। आखिर मैं सुखी से रूप-गुण में बढ़-चढ़कर नहीं क्या ?'

सुखनन्दन के जन्म-दिन को एक महीना हो गया। तुलादान में आया हुआ गेहूँ पिसा; पिसकर उसकी रोटी बनी; बाबू के माँ-बाप ने खायी, किन्तु बाबू ने वह रोटी खाने से एकदम इन्कार कर दिया। जितनी देर तुलादान का आटा घर में रहा, वह अपने चचा के यहाँ रोटी खाता रहा। वह न चाहता था कि जिस तरह माँगे-ताँगे की चीज़ें खा-खाकर उसके माँ-बाप की वृत्ति दासतापूर्ण हो गयी है, उसकी भी हो जाय—गाढ़े पसीने की कमायी हुई रोटी से तो दूध टपकता है, किन्तु हराम की कमायी से खून—और दासता खून बनकर उसकी रग-रग में समा जाय ! यह कभी न होगा। साधुराम हैरान था, बाबू की माँ हैरान थी, चचा, जिस पर उसकी रोटी का बोझ बरबस पड़ गया था, हैरान था। चची नाक-भौं चढ़ाती थी और जब घर में इस अनोखे बाइकाट की चर्चा होती तो साधुराम अचानक कपड़ों पर लम्बर गेरने छोड़ देता और पीले-पीले दाँत निकालते हुए कहता :

"खी-खी........बाबू है ना !"

सुखनन्दन ने बाबू में एक प्रकट परिवर्तन देखा। बाबू, जिसका काम से जी उचाट रहता था, अब दिन भर घाट पर अपने बाप का हाथ बटाता। बाबू अब उसके साथ नहीं खेलता था। हरिया के तालाब के किनारे एक बड़ी-सी करोटन-चील पर वह और उसके दो-एक साथी स्कूल के समय के बाद 'कान पत्ता' खेला करते थे। अब वह जगह बिलकुल सूनी पड़ी रहती थी। निकट ही बैठे हुए एक साधु, जिनकी कुटिया में बच्चे अपने बस्ते रख देते थे, कभी-कभी चरस का एक लम्बा कश लगाते हुए पूछ लेते, "बेटा, अब क्यों नहीं आते खेलने को ?" और सुखनन्दन कहता : "बाबू नाराज़ हो गया है बाबा...."

महात्मा जी हँसते और चरस का एकदम उलटा देने वाला कश लगाते और खाँसते हुए कहते, "ऊ हुँ....हुँ....वाह रे पट्ठे....आखिर बाबू जो हुआ तू !"

उस समय सुखनन्दन गर्व-स्फीत स्वर में कहता, "अकड़ता है बाबू तो अकड़ा करे........उसकी औकात क्या है, धोबी के बच्चे की !"

....किन्तु बच्चों को अपने साथ खेलने के लिए कोई-न-कोई चाहिए। खेल में किसी तरह की जाति-पाँति और दर्जे का भेद-भाव नहीं रहता। वास्तव में कुछ ही बरस की तो बात थी, जब वे एक साथ नंगे पैदा हुए थे और उस समय तक उनमें धनी-निर्धन, महाब्राह्मण, भनोट और हरिजन और इस तरह की व्यर्थ की बातों के सम्बन्ध में बात-चीत करने और सोचने-समझने की शक्ति पैदा नहीं हुई थी।

सुखनन्दन अपनी कृत्रिम मान-प्रतिष्ठा को केंचुली की तरह उतार फेंककर बाबू न के यहाँ गया। बाबू उस समय दिन भर के काम से

थककर सो रहा था। माँ ने झकझोर कर जगाया : "उठ बेटा, अब खेलने कभी न जाओगे क्या ? सुखी आया है।" बाबू आँखें मलता हुआ उठा। चारपाई के नीचे उसने बहुत से मैले-कुचैले और उजले-उजले कपड़े देखे। कपड़े जो जन्म ही से एक सुखीनन्दन और बाबू में भेद-भाव पैदा कर देते हैं....बाबू चारपाई से फ़र्श पर बिखरे हुए कपड़ों पर कूद पड़ा। उसके दिल में एक मीठी गुदगुदी-सी पैदा हुई। कई दिनों से वह खेला नहीं था और अब शायद अपने इस दर्प पर पछता रहा था। बाबू का जी चाहता था—फलाँगकर बाहर चला जाय और सुखी को आलिंगन-बद्ध....और क्या मानव के लिए मानव का प्यार कपड़ों की सीमा को पार नहीं कर जाता....क्या सुखी केंचुली नहीं उतार आया था ? बाबू चाहता था कि दोनों भाई रहे-सहे कपड़े उतारकर एक हो जायँ और खूब खेलें, खूब....बरामदे में कबूतरों के काबक के पीछे जाली में से बाबू की नज़र सुखी पर पड़ी जो उसके घर के दरवाज़े पर आशाभरी दृष्टि जमाये खड़ा था। सहसा बाबू को सुखी के जन्म-दिन की बात याद आ गयी। वह दिल मसोसकर रह गया। कबूतरों की जाली में उसे बहुत-सी बीटें दिखायी दे रही थीं और बहुत से सराज, लक्का और देसी किस्म के कबूतर 'घूँ-घूँ' करते हुए अपनी गर्दनों को फुला रहे थे। एक नर फूल-फूलकर मादा को अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। बाबू ने भी अपनी गर्दन को फुला लिया और घूँ-घूँ की-सी आवाज़ पैदा करता हुआ अपनी चारपाई पर वापस जा लेटा। फिर उसे ख़याल आया—सुखी धूप में खड़ा जल रहा है। मगर फिर वह एक निश्चित कार्यक्रम मन में तय करके चारपाई पर आँखें बन्द कर लेट गया। आख़िर वह भी तो कितना ही अर्सा उसके घर के आँगन में बरसात की चिचलाती धूप में खड़ा रहा था और उसने उसकी कोई

परवाह न की थी।....अमीर होगा तो अपने घर में।

"उसे कह दो........वह नहीं आयेगा माँ........कहो उसे फ़ुरसत नहीं है फ़ुरसत," बाबू ने कहा।

"शर्म तो नहीं आती तुझे," माँ ने कहा, "इतने बड़े सेठों का लड़का आवे तुझे बुलाने के लिए और तू यों पड़ा रहे........गधा!"

"बाबू ने कुहनियाँ हिलाते हुए कहा, "मैं नहीं जाने का माँ।"

"माँ ने बुरा-भला कहा तो बाबू बोला, "सच-सच कह दूँ माँ, मैं जानता हूँ, मेरी किसी को भी ज़रूरत नहीं........वावेला करोगी तो मैं कहीं और चला जाऊँगा।"

माँ का मुँह खुला-का-खुला रह गया। उस समय नन्ही ऊँची आवाज़ से रोने लगी और माँ उसे दूध पिलाने में निमग्न हो गयी।

बधई के पुरवा में शीतला का प्रकोप था। पुरवा की स्त्रियाँ बकरियों की तरह अपने-अपने बच्चों को कलेजे से लगाये फिरती थीं। पड़ोसिन की चौखट तक न फाँदती थीं, कहीं बू न पकड़ ले....और शीतला माता यों भी बड़ी ग़ुसैली हैं....डालचन्द की लड़की, महाब्राह्मण के दो भतीजे—सब को शीतला माता ने दर्शन दिये। उनकी माताएँ घंटों उनके सिरहाने बैठी सच्चे मोतिया के हार रखे गोरी मैया गाती रहीं और देवी माता से प्रार्थना करती रहीं कि अपना क्रोध उन पर न निकाले। जब बच्चे स्वस्थ हो जाते तो मन्दिर में उन्हें माथा टिकाने ले जातीं। माता तो हर प्रकार की इच्छा पूरी करती थी। जब पुरवा से शीतला माता का क्रोध कुछ टला और बू कुछ कम हुई तो पुरवा वालों ने शीतला की मूर्ति बनायी, उसे खूब सजाया, सुखीनन्दन के पिता ने मूँगे की माला शीतला माता के गले में डाली। सब ने मिलकर बड़े मान-प्रतिष्ठा से माता को मन्दिर से निकाला और एक सजी हुई

बहली में प्रतिष्ठित किया और बहली को घसीटते हुए गाँव के बाहर छोड़ने ले गये। पुरवा के सब बच्चे-बूढ़े जुलूस में इकट्ठे हुए। पीतल की खड़तालें, ढोल-ढमक्के बजते जा रहे थे। लोग चाहते थे कि क्रोधी माता को हरिया के तालाब के पास महात्मा जी की कुटिया के निकट उनकी ही देख-रेख में छोड़ दिया जाय ताकि माता उस गाँव से किसी दूसरे गाँव को मुँह न करे। वे माता को खुशी-खुशी विदा करना चाहते थे ताकि उन पर उल्टी न बरस पड़े। सुखी भी जुलूस के साथ गया। बाबू भी शामिल हुआ। न सुखी को बाबू के बुलाने का साहस हुआ, न बाबू को सुखी के। हाँ, कभी-कभी वे कनखियों से एक दूसरे को देख लेते थे।

हरिया के तालाब के पास ही धोबी-घाट था। एक छोटी-सी नहर के द्वारा तालाब का पानी घाट की ओर खींच लिया जाता था। घाट था बहुत लम्बा-चौड़ा। निकट के सभी कसबों के धोबी कपड़े धोने आया करते थे। उसी घाट पर बाबू और उसके भाई-बन्धु, बाप-दादा, वही एक गाना, उसी पुरानी सुर-ताल से गाते हुए कपड़े धोये जाते। एक दिन घाट पर बाबू सारा दिन सुखी के बिना बड़ी बुरी तरह अपने आपको अकेला महसूस करता रहा। कभी-कभी वह अकेला ही करोटन चील के बल खाते तनों पर चढ़ जाता और उतर आता। मानो सुखी के साथ 'कान पत्ता' खेल रहा हो। खेल में आनन्द न आया तो वह ईंटों में रखी हुई शीतला माता की मूर्ति को देखने लगा। और पूछने लगा कि वे गाँव से चली गयी हैं या नहीं?

माता कुछ क्रुद्ध दिखायी देती थीं। साँझ को बाबू घर आया तो उसे हल्का-हल्का ज्वर था जो कि धीरे-धीरे बढ़ता गया। बाबू को अपनी सुध-बुध न रही। एक बार उसे होश आया तो उसने देखा—माँ ने

मोतिया का एक हार उसकी चारपाई पर रखा था, निकट ही ठंडे पानी से भरा हुआ कोरा घड़ा था। घड़े के मुँह पर भी मोतिया के हार पड़े थे और माँ एक नया खरीदा हुआ पंखा धीरे-धीरे हिलाती हुई मुँह में गोरी मैया गुनगुना रही थी। पंखा म्रियमाण व्यक्ति की नाड़ी की तरह धीरे-धीरे चल रहा था और अलगनी पर लाल फुलकारियों के पर्दे बूढ़ी दादी की झुर्रियों की तरह लटक रहे थे और यह सब साज-सज्जा माता के आदर-स्वरूप की गयी थी। बाबू ने अपने पलकों पर मनों बोझ महसूस किया। उसके सारे शरीर पर काँटे चुभ रहे थे और उसे यों लगता था, जैसे उसे भट्टी में झोंक दिया गया हो।

दो-तीन दिन तक तो बाबू ने करवट तक न ली। एक दिन उसे कुछ थोड़ा-सा आराम महसूस हुआ। केवल इतना कि वह आँखें खोल-कर देख सकता था। आँख खुली तो उसने देखा—सुखी और उसकी माँ दरवाज़े के निकट बैठे हुए थे। सेठानी ने नाक पर दुपट्टा ले रखा था। वास्तव में वे दरवाज़े में इसलिए बैठे थे कि बू न पकड़ ले, लेकिन बाबू ने समझा—आज उन लोगों का दर्प टूटा है। उसने दिल में एक खुशी की लहर महसूस की। एक ज्योतिषी जी साधुराम को बहुत-सी बातें बता रहे थे। उन्होंने नारियल, बताशे इत्यादि मँगवाये थे। साधुराम अपना हाथ कभी-कभी बाबू के तपते हुए माथे पर रख देता और कहता :

"बाबू....ओ बाबू....बेटा बाबू !"

उत्तर न मिलता तो एक मुक्का-सा उसके कलेजे में लगता और वह गुम हो जाता।

बाबू ने बड़ी कठिनाई से काँटों के बिस्तर पर करवट बदली। फूल हाथ से सरकाकर सिरहाने की ओर रख दिये। गले में कटुता-सी

महसूस की। हाथ बढ़ाया तो माँ ने पानी पिला दिया। बाबू ने देखा—उसके एक ओर गेहूँ का ढेर लगा हुआ है। ज्योतिषी जी के कहने पर उसकी माँ ने बाबू को उठाया और एक लटकते हुए तराज़ू के एक पलड़े में रख दिया। तराज़ू के दूसरे पलड़े में गेहूँ और दूसरी चीज़ें डालनी शुरू कीं। बाबू ने अपने आपको तुलता हुआ देखा तो कुछ विचित्र प्रकार की आत्मिक शांति प्रतीत हुई। चार दिन के बाद आज उसने पहली बार कुछ बोलने के लिए ओंठ खोले और इतना कहा :

"अम्माँ कुछ गेहूँ और उड़द की दाल दे दो सुखी की माँ को ....कब से बैठी है बेचारी !"

साधुराम ने अपना हाथ बाबू के तपते हुए माथे पर रख दिया। उसकी आँखों से आँसुओं की चन्द बूँदें गिरकर फ़र्श पर बिखरे कपड़ों में गुम हो गयीं। साधुराम ने कपड़ों को एक ओर हटाया और बोला :

"पंडित जी....दान से बोझ टल जायगा........मैं तो घर-बार बेच दूँ........पंडित जी........!"

बाबू की माँ ने सिसकियाँ लेते हुए सेठानी से कहा, "मालकिन........कल नैनीताल जाओगी....कल नहीं तो परसों मिलेंगे कपड़े........हाय मालकिन तुम्हें कपड़ों की पड़ी है।"

बाबू को कुछ सन्देह-सा हुआ। उसने फिर बड़ा कष्ट सहकर करवट बदली और बोला, "अम्माँ........अम्माँ........आज मेरा जन्म-दिन है न ?"

अब साधुराम के सोते फूट पड़े। एक हाथ से गले को दबाते हुए वह भर्राई आवाज़ में बोला :

"हाँ बाबू बेटा........आज जन्म-दिन है तेरा.......बाबू........ बेटा !"

बाबू ने अपने जलते हुए शरीर और आत्मा से सब कपड़े उतार दिये। मानो नंगा होकर सुखी हो गया और पलकों पर मनों बोझ महसूस करते हुए पलकें धीरे-धीरे बन्द कर लीं।

नामुराद

सफ़दर, नक़शबन्दों के यहाँ का बड़ा लड़का, कॉलेज से लौटा तो खाना खाकर कुछ पल आराम करने को लेट गया। सोने के पहले उसके हाथ में अखबार था जिसमें लिखी हुई खबरें पेट में पाचन-क्रिया के साथ धुँधली होती गयीं....होती गयीं....। सफ़दर को पता था कि वह सो रहा है। उसके अंग-अंग आराम के इच्छुक हो रहे थे। अपने आप ही यह खयाल भी उसके दिमाग़ में आया कि मरते समय भी तो कुछ ऐसी ही दशा होती है। अंग-अंग थककर चूर हो जाते हैं और एक ऐसे सुख-आराम के इच्छुक जिसका कोई अन्त नहीं........सफ़दर सो गया, लेकिन वह मरा नहीं....। आराम की अनुभूति कैसी....अभी तो उसके अंगों को सुख भी नहीं मिला था कि उसे झकझोरकर जगा दिया गया। उसने घबराकर आँखें खोल दीं लेकिन वे खुल न सकीं। पलकों के झीने पर्दों में सपनों के गलियारे—धमनियाँ, शराबी हो रही थीं। उसने अपनी आँखें दबायीं और खोलीं। वह उस दृश्य के लिए तैयार न था। वह उस समाचार के लिए तैयार न था जो आज के अखबार में न छपा था। बड़े नक्शबन्द—अमीर अली नक्शबन्द,

उसके पिता, खाट के पास खड़े थे और समीप ही माँ दरवाज़े में खड़ी किसी दुख के फलस्वरूप आँसू बहा रही थी।

"उठ बेटा....अरे उठ भी। इस क़दर ग़ाफ़िल मत हो।"

ग़ाफ़िल का शब्द नक्शबन्दों के यहाँ प्रायः प्रयोग किया जाता था और उसके अर्थ भी दूसरे होते थे, उन अर्थों से भिन्न जिनमें हम तुम और सभी लोग उसे प्रयोग करते हैं। सभी-के-सभी नक्शबन्द बड़े धार्मिक और पवित्र जीवन बिताने वाले होते थे। उनके विचार से ख़ुदा की बन्दगी के अलावा जो समय भी गुज़रता था, ग़फ़लत में गुज़रता था। खाना, पीना, कोर्स रटना, सिनेमा देखना, सोना—सब ग़फ़लत में गिना जाता था। सफ़दर ने अपने आप अन्दाज़ा कर लिया कि नमाज़ के बारे में कुछ कहते होंगे। वह जी चुरा के सोने लगा। जब बड़े नक्शबन्द नमाज़ तस्बीह, और रोज़े इत्यादि के बारे में कुछ कहते तो सफ़दर 'जिगर' का एक शेर पढ़ देता :

मर्दे-तस्बीह तो सब हैं मगर इदराक कहाँ :
ज़िन्दगी ख़ुद ही इबादत है, मगर होश नहीं *

इस शेर में इंसान के लिए कितनी आज़ादी थी! वह पुण्य में भी आज़ाद था तो पाप में भी आज़ाद। पाप भी इबादत (उपासना) था....पौधों के हवा में सिर हिलाने की विश्वव्यापी स्वीकारोक्ति, पक्षियों का कलरव, तारों की एक अज्ञात केन्द्र के चारों ओर परिक्रमा—यह सब कुछ उपासना थी जो उठते-बैठते सोते-जागते हो रही थी। बड़ी मछली का छोटी मछली को खा लेना, इंसान का इंसान को कुचल देना, झूठ का सच पर छा जाना....यह सब कुछ उपासना होती थी। लेकिन अगर

* माला तो सभी फेरते हैं, लेकिन विवेक कहाँ है?
जीवन ख़ुद ही एक पूजा है, लेकिन उसका होश हमें नहीं।

वह ग़ाफ़िल न होता, अगर वह सुस्त न होता तो उसकी उपासना पूर्ण हो जाती, क्योंकि माँ और बड़े नक्शबन्द भी इस शेर को काहिली का एक औचित्य समझते थे। उनके विचार से जीवन-धारा में बहता हुआ तिनका एक इरादा रखता था। चाहे कितना ही महत्वहीन था वह, लेकिन कुछ लहरें थीं जो उससे डरती थीं—उस अकिंचन तिनके से.... लेकिन माँ की सिसकियाँ! यह सिर्फ़ वह ग़फ़लत न थी। सफ़दर जैसे बिजली के किसी नंगे तार से छू गया और उठकर बैठ गया।

बड़े नक्शबन्द ने शांतिपूर्वक कहा, "बेटा उठ, कपड़े बदल ले। तुम्हारी ससुराल से बुलावा आया है।"

"मेरी ससुराल से?" सफ़दर ने आश्चर्य से पूछा और माँ की ओर देखते हुए बोला, "माँ—।"

माँ ने अपनी भावनाओं को दबाते हुए कहा, "नामुराद! उठ, जा तुझे मेरी खुशदामन ने बुलाया है।"

'नामुराद' और 'खुशदामन' के शब्द कुछ अजीब ढंग से प्रयोग किये गये थे। वे 'नामुराद' का शब्द उस समय कहा करती थी जब वह 'गोर में पटे', 'खून थूके' के अर्थों की सीमा से बहुत अलग प्रेम और घृणा की उलझनों में हल्की-सी झुँझलाहट को व्यक्त करना चाहती थी। लेकिन आज उन्होंने नामुराद कुछ इस तरह कहा था जैसे उनका बेटा सफ़दर वास्तव में भाग्यहीन हो....और उसकी मँगेतर की माँ को वह खुशदामन के नाम से कम ही पुकारा करती थी। वह सिर्फ़ राबों की माँ कह देती थी। सफ़दर का माथा ठनका। आज खुशदामन के शब्द पर ज़ोर देने और दहलीज़ पर खड़े आँसू बहाने का कारण यह तो नहीं कि माँ के हाथ से खुशी का दामन छूट गया है और राबों की माँ के हाथ से भी?

लेकिन क्या हर्ज है ?—सफ़दर ने पल भर में सोच लिया। उसने अपने हाथ सिगरेट की ओर बढ़ाये, लेकिन बड़े नक्शबन्द को देखकर रुक गया। उनके सामने सिगरेट पीने का अर्थ था घर से निकाला जाना। किन्तु वह अपनी बेपरवाही को कैसे व्यक्त करे ? सफ़दर ने झुककर चारपाई के नीचे से बूट कटवाकर बनाये हुए स्लीपर निकाले और उन्हें पहनकर खड़ा हो गया और अपनी माँ की ओर खाली-खाली निगाहों से देखने लगा—"क्या राबों की माँ ने कोई और रिश्ता देख लिया है ? या....?" वह अपने आपको धोखा देना चाहता था....। मान लो अगर राबों, बेचारी राबों को कुछ हो भी गया तो फिर उसे बुलाने की क्या ज़रूरत है ?

नीचे ज़ीने पर धम-धम की आवाज़ें आने लगीं। सड़क पर खुलने वाली खिड़की से घर के ज़ीने का आखिरी हिस्सा भी दिखायी देता था। घर में कौन है, यह देखने के लिए सफ़दर ने खिड़की को खोला और नीचे झाँका—जुम्मन था—राबों का नौकर। शायद वही यह खबर लाया था जिसे सहसा बता देने में बड़े नक्शबन्द और उसकी माँ एक स्वाभाविक भय के कारण हिचक रहे थे....अभी दोपहर ढल रही थी किन्तु आसमान पर सलारों की पंक्तियाँ बड़े-बड़े और सुस्त परों की तरह उड़ने लगीं। शहर का धुआँ गाढ़ा हो रहा था और शहर को समय के पहले ही अँधेरे में लपेट रहा था।

माँ अभी तक कुछ बोल न सकी थी। यह उसकी आदत थी। वह जन्म, विवाह और मृत्यु—तीनों अवसरों पर अपनी भावनाओं को शब्दों से सन्तुष्ट नहीं कर पाती थी। बड़े नक्शबन्द ने इर्द-गिर्द कोई कुर्सी न देखी तो सुराही वाली तिपाई लेकर बैठ गये, जिस पर से बहुत दिन हुए सुराही हटा दी गयी थी। बोले, "बेटा ! यह बड़ी बुरी खबर

है। तुम्हारी राबों चल बसी....।" माँ ने अपना मुँह छिपा लिया और फिर जल्दी से अपने बेटे की तरफ़ देखने लगी....सफ़दर इस खबर के लिए तैयार न था, लेकिन उसने हैरानी से मुँह खोल देने के अलावा कुछ न किया।

नक्शबन्द ज़माने की दौड़ में बहुत पीछे रह गये थे। सफ़दर को इस बात की सख्त शिकायत थी। उस लड़की के लिए उसे कैसे दुख हो सकता था जिसे उसने कभी देखा ही न था। उसका चेहरा साफ़ कह रहा था कि राबों मर गयी तो क्या हुआ? उसे सिर्फ़ इतना दुख हो रहा था जितना राह चलते किसी लाश के मिल जाने से राही को होता है। शायद उससे कुछ अधिक क्योंकि राबों का नाम अब उसके नाम के साथ लिया जाता था। उसके कान राबों-सफ़दर, सफ़दर-राबों के आदी हो गये थे। जब पहले पहल वामिक़-अज़रा, हीर-राँझा, रोमियो-जूलियट के नाम इकट्ठे लिये गये होंगे तो कानों को कैसी ठेस लगती होगी। लेकिन अब यह नाम घरेलू बन गये थे, रोज़ मर्रा के—इसी प्रकार राबों और सफ़दर के नाम रोज़ का विषय हो गये थे। आज राबों परीक्षा दे रही है, आज सफ़दर भाषण कर रहा है....राबों कितनी सुन्दर है और इतनी स्वस्थ....सफ़दर....सफ़दर गोरा-चिट्टा है—राबों लाल बहुत है और इसलिए कुछ खौलाये हुए खून की तरह स्याही मायल....सफ़दर को कुछ रंज हुआ। उसने सोचा 'सफ़दर-रशीदा,' 'सफ़दर-मुनव्वर', 'सफ़दर-नुज़हत'....लेकिन उसके कानों को कुछ बुरा मालूम हुआ। उसने कुछ शरमाते हुए कहा :

"अब्बा जान! मुझे अफ़सोस है...... लेकिन मैं जाकर क्या करूँगा?"

अम्मा जान ने हाथ मलते हुए कहा, "बेटा यह तो ठीक है,

लेकिन तुम्हारी राबों की माँ ने ख़्वाहिश ज़ाहिर की है।"

सफ़दर को 'तुम्हारी' शब्द की पुनरावृत्ति पर मन-ही-मन में हँसी आयी। इससे पहले भी वह उसकी थी, लेकिन किसी ने इस प्रकार उसे सफ़दर से सम्बन्धित नहीं किया था। अब वह मरकर और भी 'तुम्हारी' हो गयी थी, अब जब वह वास्तव में किसी की न थी। किन्तु वह मर कैसे गयी? यह अब तक सफ़दर ने न पूछा था—वास्तव में इस खबर से वह भौंचक्का-सा रह गया था, किन्तु नक्शबन्दों के घर की झूठी शर्म की खातिर उसने आश्चर्य न दिखाया था। उसने बड़ी मुश्किल से कहा, "पर माँ कल मुझे उसका भाई मिला था....।"

बड़े नक्शबन्द ने उठते हुए कहा, "बेटा सफ़दर! बेचारी अचानक चल बसी—अचानक....उसे एक खास बीमारी थी।"

इस खास बीमारी के बारे में सफ़दर कुछ न पूछ सका। वह कपड़े उतारने के लिए खूँटी की तरफ़ चला और उसके हाथ अपने आप उन कपड़ों की ओर उठ गये जो अपेक्षाकृत काले थे।........खास बीमारी? उसने अपने आप से पूछा। वह जानता था कि औरतों को कई प्रकार की कहने और न कहने लायक़ बीमारियाँ होती हैं। उसके घर में खुद उसकी माँ हर समय किसी-न-किसी अनकहनी बीमारी से लाचार रहती थी। घर के सब ताक़ शीशियों से भरे रहते थे—जैसे उसे किताबें सजाने का शौक़ था इसी तरह उसकी माँ को शीशियाँ सजाने का। लेकिन दूसरे डाक्टर के पास जाते समय कोई शीशी न होती थी और बड़े नक्शबन्द सिटपिटाया करते थे। वह जितना ही माँ से उसके रोग के बारे में पूछता, उतना ही उसे यह कहकर टाल दिया जाता—"पेट-दर्द है—सिर दुख रहा है—छाती फुँक रही है—उबकाइयाँ आ रही हैं," आदि। और अब उसने स्त्रियों के रोगों के बारे में पूछना छोड़

दिया था। वह जानता था कि स्त्रियों में सहनशक्ति अधिक होती है और वे बीमारियों से बच निकलती हैं....लेकिन राबों मर गयी!

सफ़दर ने पूछा, "मय्यत कब उठेगी, मियाँ जी?"

मियाँ जी ने जवाब दिया, "आठ बजे। इससे पहले न उठ सकेगी।"

माँ ने कहा, "एक भाई जालन्धर में दुकान करता है। उसे भी तार दिया है।"

"आप भी शामिल होंगे?" सफ़दर ने पूछा।

"किसी पर अहसान थोड़े ही है....।"

सफ़दर ने आग्रह करते हुए कहा, "मियाँ जी! मैं भी आपके साथ शामिल हो जाऊँगा।"

सफ़दर ने देखा—इस प्रकार के सवाल बड़े नक्शबन्द को कुछ उचित नहीं लग रहे हैं। उन्होंने अपने ओंठ काटे और कहा, "तुम मेरी बात मानोगे या अपनी कहे जाओगे?"

सफ़दर ने सिर झुका लिया। माँ हस्तक्षेप करते हुए नर्मी से बोली, "बेटा राबों को तुम्हारे पहुँचने के बाद नहलाया जायगा।" और माँ शोकाकुल होकर रोने लगी। उसने दीवार से सिर मारते हुए कहा, "हाय मेरी बेटी! मैं तुझे बहू बनाकर लाती इस घर में....।"

सफ़दर को और भी आश्चर्य हुआ, लेकिन वह और सवाल किये बग़ैर चल दिया। सीढ़ियाँ उतरते ही उसे जुम्मन मिल गया। जुम्मन बड़ी उत्कंठा से उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसकी आँखों से भी पता चल रहा था कि वह रोता रहा है। सफ़दर ने कहा, "जुम्मन!" लेकिन जुम्मन ने कोई जवाब न दिया। वह सफ़दर को देखकर फिर से रोने लगा था। सफ़दर ने कहा, "चलो।" और जुम्मन रोता हुआ-सा साथ

हो लिया। सफ़दर चलता गया और सोचता गया—उसके जाने के बाद ही राबों को नहलाया जायगा....क्यों....क्यों....राबों के यहाँ के लोग सख़्त पर्दे के क़ायल हैं। आज उसका उस घर में प्रवेश कैसे होगा ? उस घर में जिसमें उसे दामाद बनकर, सेहरा बाँधकर जाना था.........वह अन्दर कैसे जायगा ! उसने अपनी उस 'तुम्हारी' को देखा भी नहीं था। वह 'नामुराद' था, माँ और खाला के कथनानुसार। राबों सुन्दर थी, हज़ारों में एक। लेकिन अगर वह शादी के बाद बदसूरत निकलती तो वह क्या कर लेता ? उससे किसी ने पूछा नहीं था। सम्भव है लोग लम्बूतरा चेहरा पसन्द न करते हों, लेकिन उसे ऐसा चेहरा पसन्द है और उसने बचपन ही से एक विशेष प्रकार के इयररिंग अपनी दुल्हन को पहनाने का इरादा कर रखा है जो लम्बूतरे चेहरे पर अच्छे दिखायी दें....।

जुम्मन बड़ी खामोशी से मैला-कुचैला तौलिया कन्धे पर डाले नंगे पैर सफ़दर के पीछे-पीछे आ रहा था। यों मालूम होता था जैसे वह सफ़दर बाबू के पद-चिन्हों पर अपने पाँव रखकर चल रहा है। लेकिन सफ़दर ने इस मर्माहत स्वामिभक्त नौकर को बातों से आज़माना न चाहा, और वह चलता गया। उसे दो-तीन फ़र्लांग शहर की तंग और अँधेरी गलियों में से, जहाँ बहुत शोर-गुल था, गुज़रना था....सम्भव है राबों को अपना मँगेतर पसन्द न होता....और सफ़दर ने अपने गोरे-चिट्टे हाथों को देखा और बाज़ार में चलते हुए एक बहाने से सोडावाटर वाली दुकान में लगे हुए शीशे के सामने खड़ा हो गया। उसके बाल सुलझे हुए नहीं थे, लेकिन उसके चेहरे पर एक आकर्षक बेपरवाही दिखायी दे रही थी, जिसे सफ़दर ने खुद भी महसूस किया। किन्तु यह तो आत्म-प्रशंसा थी....उस समय दोपहर शाम में ढल चुकी थी।

कबूतरों ने उड़-उड़कर तारों पर बैठना शुरू कर दिया था। एक कबूतर ने मसखरापन करते हुए सफ़दर के कोट पर बीट कर दी। जुम्मन ने दौड़कर उसे तौलिये से पोंछ दिया। "रहने दो...." सफ़दर ने कहा, "मैं ऐसी ही ज़िल्लत के लिए पैदा हुआ हूँ....।"

वहमी सफ़दर ने यह वाक्य योंही कह दिया था, लेकिन इससे जुम्मन को बहुत तसल्ली हुई। वरना वह अब तक यही सोचता आ रहा था कि सफ़दर बाबू को रावों बीबी के मरने का ज़रा भी दुख नहीं है। लेकिन सफ़दर अपनी गुत्थियाँ सुलझा रहा था। उसे दुख था, किन्तु उसकी आँखों में आँसू न आ सके और वह दिखावे के लिए रोना नहीं चाहता था। उसने सोचा, क्या अजब जो उसे नापसन्द करके रावों ने कुछ खा लिया हो। और भय से उसका शरीर और आत्मा तक काँपने लगी....शायद रावों की माँ ने अपनी इसी मूर्खता की ओर ध्यान दिलाने के लिए उसे बुलाया हो। लेकिन ऐसी बातें कहने के लिए तो उसे दुनिया भर के माँ-बाप के पास जाना चाहिए था।

एक जगह सफ़दर ने पीछे मुड़कर जुम्मन को पुकारा।

जुम्मन ने कहा, "हाँ सरकार!"

"बीबी को क्या तकलीफ़ थी?"

जुम्मन का गला फिर दुख से भर आया। उसने कहा, "बड़ा ज़ुलुम हुआ सरकार....बड़ा घोर ज़ुलुम हुआ....।"

"रावों बीबी ने खा लिया कुछ?"

"है है........" जुम्मन ने दोनों कान हिलाते और कानों को छूते हुए कहा, "रावों बीबी ऐसी न थी सफ़दर बाबू!........उस ऐसी नेक लड़की मैंने आज तक नहीं देखी। तुम्हारी नौकरानी ने बताया है।"

"हमारी नौकरानी!" सफ़दर ने आश्चर्य से पूछा। और फिर

कहा, "अच्छा ! तुम्हारी बीवी ने।"

जुम्मन ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "कुँआरी बीबी के बारे में यह बात कहने लायक़ नहीं है। जो मैं गुनाह करता हूँ...." और यह कहते हुए जुम्मन ने ज़मीन पर से मिट्टी छुई और कानों को हाथ लगाया, "....तो अल्लाह बख़्श दे। बीबी नहाने वाली थी कि उसने ठंडे पानी से नहा लिया। और इसके बाद वह बिलकुल जुड़ गयी...."

"नहाने वाली थी तो नहा लिया ?" सफ़दर ने आश्चर्य से पूछा और फिर समझते हुए बोला, "ओह—हाँ....मैं समझ गया जुम्मन। इसमें गुनाह की कौन-सी बात है ?"

और फिर दोनों चुपचाप चलने लगे। सफ़दर का बुलाना उसके लिए और भी पहेली बन गया। उसे बड़ी तसल्ली हुई कि राबों अपने मँगेतर के कारण निराश नहीं हुई। वह इतनी अच्छी लड़की थी। इसी-लिए वह 'नामुराद' था। सफ़दर को फिर महसूस हुआ कि वह राबों के लिए सहानुभूति की भावना पैदा कर रहा है....कोशिश से....मेहनत से ....वास्तव में उसे अपने आपको कुछ महसूस नहीं होता। शायद ग़मी वाले घर में पहुँचकर उसका दिल पसीज जाय। लेकिन अगर उससे न रोया गया तो बुरी बात होगी। और अगर वह रो दिया तो और भी बुरी बात होगी।

सफ़दर के विचार पीछे की तरफ़ दौड़ गये जब राबों की माँ लड़का देखने आयी थी—जब उसने सफ़दर को देखा था, मुझे देखा था, और राबों को किसी ने न पूछा था। वह खुद राबों थी, वरना वह खुद उसे किस तरह पसन्द कर सकती थी ? उस वक़्त वह राबों की माँ का दामाद नहीं था, बल्कि एक लड़का था, सुन्दर गठे शरीर

वाला....एक मर्द। और राबों की माँ ने फ़ैसला कर लिया था कि राबों के लिए यह मुनासिब वर है। उसने अपने मस्तिष्क में राबों और सफ़दर को इकट्ठे खड़े देख लिया था—क्या अच्छी जोड़ी थी। लेकिन उस समय राबों कहाँ थी? कल्पना में सफ़दर के साथ खड़ी राबों की माँ थी, राबों नहीं थी....और सफ़दर को इन सड़ी हुई रस्मों से नफ़रत थी। क्यों नहीं उसे राबों को दिखाया गया और न वह उसे दिखायी गयी। अब राबों मर चुकी है और वह उसके लिए कुछ भी महसूस नहीं कर रहा। वह क्यों उनके दुख-दर्द में शरीक नहीं हो सकता? अब उसे क्यों बुलाया जा रहा है? उसे चिढ़ाने के लिए? इन पाबन्दियों पर आँसू बहाने के लिए?....सिर पीटने के लिए....?

'आफ़ताब मंज़िल' के सामने पहुँचकर सफ़दर रुक गया। घर में खामोशी थी, एक रहस्यमय निस्तब्धता, जो आम तौर से मातम वाले घर में नहीं होती। शायद मातम करने वाले सुबह से रो-रोकर निढाल हो चुके थे। उनके गले सूख गये थे और अब उनके शरीर का रोआँ-रोआँ रो रहा था। यह मौन रोदन था जो क्रन्दन से कहीं अधिक था। दिखावा तो था नहीं। जवान बेटी देखते-ही-देखते हाथों से चली गयी थी। सफ़दर रुक गया। वह खुद हैरान था कि इस घर में किस प्रकार जा रहा है। राबों को भी इस प्रकार की शिक्षा न दी गयी थी जिससे वह यह हरकत न करती। वह शर्म-हया की पुतली, सतीत्व और पवित्रता की मूर्ति एक झूठी शर्म की शिकार होकर रह गयी। क्या उसने मरने के पहले एक बार भी सफ़दर के बारे में सोचा? नहीं—बिलकुल नहीं। उसे क्या मालूम सफ़दर किस प्रकार का आदमी है। उसका कोई काल्पनिक दूल्हा होगा जैसा हर लड़की का होता है, लेकिन वह सफ़दर नहीं होगा। वह कोई और होगा। ऐसे ही जैसे उसकी

काल्पनिक दुल्हन राबों से ज़रूर भिन्न होगी। और वह राबों के लिए उसी तरह महसूस करेगा जैसे उसने किसी भी मरने वाली लड़की के लिए महसूस किया हो। उसका इस घर में क्या अधिकार है, वह क्यों जाये, उसे क्या अधिकार है ?—वह आगे बढ़ा, ठिठका—बढ़ा—उसे जुम्मन को भेजकर बुलाया गया है....।

राबों की छोटी बहन, क़मर जो मँगनी में भी सफ़दर के यहाँ आयी थी, दौड़ी हुई बाहर आ गयी। उसके मुँह से चीख निकल गयी—"दूल्हा भाई आ गये!" सफ़दर ने अपनी तरफ़ देखा। वह दूल्हा भाई था। काले कपड़े पहनकर अपनी दुल्हन को लेने आया था.... उसे सब कुछ अजीब मालूम हुआ, एक ढोंग, एक अर्ध राजनीतिक चाल....उसे यहाँ क्यों बुलाया गया था ? राबों का भाई आया। उसकी आँखें सूजी हुई थीं। उसकी क़मीज़ के बटन खुल रहे थे। शलवार का एक पायँचा ऊपर नेफ़े में था और दूसरा ज़मीन पर फिसल रहा था। वह भौतिक अनुभूति से ऊपर आत्मिक कष्ट में था, जिसने उसके शरीर का हुलिया बिगाड़ दिया था। वह चीखा और उसने सफ़दर की बाँह पकड़ ली जैसे वही उनका अपराधी हो। वह भी उसे दूल्हा भाई कहना चाहता था, किन्तु उसने न कहा। वह केवल रोता रहा, बालिग़ आदमी का रोना जो हर उम्र के आदमी के रोने से भद्दा होता है क्योंकि वह रोना नहीं चाहता, लेकिन रोता है। फिर उसके चेहरे की नसें तन जाती हैं और वह उस तनाव को छिपाता है।

सफ़दर घर के अन्दर गया। घर में बर्तन और कपड़े इधर-उधर बिखरे हुए थे। राबों की माँ बाल बिखेरे बैठी थी। वह भूल रही थी। शोक के कारण वह एक जगह बैठ न सकती थी। वह जीती थोड़े ही थी, वह मर चुकी थी। राबों जीती थी, राबों की माँ मर चुकी थी।

सफ़दर को देखते हुए उसने बड़े भयानक ढंग से चिल्लाना शुरू किया। एक बन्द दरवाज़ों वाले कमरे के अन्दर से भी किसी बूढ़े आदमी के रोने की आवाज़ आयी। शायद यह राबों के बाप थे जो किसी के सामने रोना नहीं चाहते थे। अब सफ़दर को रोने के लिए कोशिश करने की ज़रूरत न थी। आँसू उसकी आँखों से टप-टप गिर रहे थे।

राबों की माँ गिरते-पड़ते उठी और उन्मत्त की भाँति सफ़दर के गले में बाहें डालती हुई बोली, "बेटा, तू इस घर में सेहरा बाँध कर आता! बेटा, ! मैं तेरे शगुन मनाती, तेरा सिर चूमती, लेकिन मैं रोने के सिवा कुछ नहीं कर सकती। अल्लाह को मेरा रोना मंजूर था....।" सफ़दर के सामने एक लाश ढँकी पड़ी थी; माँ, बाप, सास, ससुर के अरमानों की लाश—राबों....सफ़दर को रोने के लिए कोई भी कोशिश न करनी पड़ी। उसके दिल में एक उबाल-सा आया—अस्थायी-सा उबाल जो शायद राबों को सामने पड़े देखकर नहीं आया था, बल्कि अपने इर्द-गिर्द इंसानियत के दुख-दर्द को देखकर आया था....राबों की माँ ने कहा, "बेटा! तू क्यों रोता है....?" किन्तु राबों की माँ ने उसके रोने में एक खुशी, एक सन्तोष-सा अनुभव किया। अगर वह न रोता तो.... सफ़दर को राबों की माँ ने आखिर किस लिए बुलाया था? राबों की माँ ने कहा, "बेटा! तू क्यों रोता है? तेरे लिए दुल्हनें बहुतेरी। मेरे लिए बेटी नहीं कोई। मेरी राबों मुझे कहीं नहीं मिलेगी।" सफ़दर ने मन-ही-मन में क्रुद्ध होते हुए कहा, "तुम्हारे अंधविश्वासों, तुम्हारी झूठी शर्म की शिकार लड़की शायद अब तुम्हें न मिलेगी। शायद तुम इस खोटे सिक्के के इच्छुक न होगे....तुम लोग ज़ालिम हो....निर्दयी ....मैं ज़ालिम हूँ, बेरहम, संगदिल,....शायद मैं दिल की तह से आँसू लाता—लेकिन अब राबों कौन है ?....यह मेरी दुल्हन नहीं....।"

राबों की माँ ने सफ़दर को रोते देखा तो चुप हो गयी। न जाने क्यों चुप हो गयी। और फिर बोली, "बेटा ! तू मत रो। मैं तेरे लिए दुल्हन लाऊँगी, राबों से भी ज़्यादा खूबसूरत—उससे भी ज़्यादा लम्बे बालों वाली........तेरी रोये जूती........लेकिन मेरी बेटी नामुराद जा रही है इस दुनियाँ से, उसे एक बार देख ले। उसकी शादी यही है कि तू उसे एक नज़र देख ले—देख—देख....देख मैं तुझे क्या दे रही थी, नसीबों जले !"

सफ़दर इस बात के लिए तैयार न था। उसे इस वातावरण से घृणा हो रही थी, एक विचित्र सहानुभूति-पूर्ण घृणा ! इन बिखरे हुए बर्तनों, इन फटे हुए कपड़ों, इस कफ़न—इस लाश—से एक प्रकार की सहानुभूति और घृणा....वह यहाँ से भाग जाना चाहता था। उसे पूरा भरोसा था कि उसे बेकार परेशान किया जा रहा है—उसे विश्वास था कि मरने वाली की आत्मा को बेकार कष्ट दिया जा रहा है। केवल स्वार्थ, केवल अपनी तुष्टि के लिए वह इस मातम वाले घर में उस 'दूसरी लड़की' के बारे में कुछ भी सुनने के लिए तैयार न था और फिर मरने वाली की माँ के मुँह से....उसे आश्चर्य हुआ....किन्तु वह चुप रहा। वह भाग न सका। एक विशेष प्रकार की हैरानी उस पर छा गयी, जो मुर्दे को देखने के लिए हर ज़िन्दा आदमी पर छा जाती है। वह जानता था कि वह डर जायेगा, किन्तु वह राबों को देखना चाहता था, उसे सुहागिन बनाना चाहता था। वह नामुराद थी और सफ़दर खुद नामुराद था। राबों की माँ ने राबों के मुँह से कपड़ा हटा दिया। राबों खून के खौलने से साँवली बतायी जाती थी किन्तु अब उसका खून खौल नहीं रहा था, उसका खून ठंडा हो गया था, जम चुका था—लाली और पीलेपन ने मिलकर एक विचित्र प्रकार की सफ़ेदी पैदा

कर दी थी। हवा में उसके बालों की हिलती हुई लट से उसके जीवित होने का गुमान होता था—वह कितनी सुन्दर थी—मरकर और भी सुन्दर हो गयी थी—उसका लम्बूतरा चेहरा जिस पर सफ़दर की कल्पना में उसे इयररिंग कितने फबे........किन्तु वह सब अपरिचित था। वह इस घर का दूल्हा था लेकिन एक अजनबी था.......और फिर एक दूल्हा—राबों की माँ उसे कोई कम दर्जा देने को तैयार नहीं थी। उसने एक बार फिर चिल्लाते हुए कहा :

"सफ़दर बेटा ! देख तुझे मैं क्या दे रही थी—मेरी बेटी नामुराद जा रही है। नहीं मेरी बेटी नामुराद नहीं है—सफ़दर !...."

सफ़दर ने एक बार फिर भागने का प्रयत्न किया, किन्तु उसके पाँव ज़मीन में गड़े हुए थे। उसका दिमाग़ चकरा गया था। वह नहीं जानता था कि राबों नामुराद है या वह खुद—सफ़दर—या दोनों जो एक-दूसरे से अपरिचित हैं—या राबों की माँ नामुराद है जो दोनों को जानती है !

दस मिनट बरखा में

.........अबूबकर रोड शाम के अँधेरे में गुम हो रही है। यों दिखायी देता है जैसे कोई चौड़ा-सा रास्ता किसी कोयले की खान में जा रहा है....मूसलधार पानी में दरौंटा की बाढ़, सेफ़र्निया का गुलाब, क़ुतुब सय्यद हुसेन मक्की के मज़ार शरीफ़ के खण्डहर में एक खुलते हुए मुश्की रंग की घोड़ी जिसकी पीठ भीगकर काली साटन की तरह दिखायी दे रही है—सब भीग रहे हैं—और राटा भीग रही है !

राटा कौन है ? उसे कल्पवृक्ष कह लो या कामधेनु। या इससे भी अच्छा राटा—राटा है फरायालाल की बीवी, एक दस वर्षीय आलसी, मूढ़ और नालायक़ लड़के की माँ। कुछ महीने पहले छटनी में ह्यूम पाइप कम्पनी वालों ने फरायालाल को काम से अलग कर दिया था। उस समय से उसके शांत जीवन में भाग्य के बवण्डर उठने लगे थे, जीविका की खोज में वह न जाने कहाँ चल दिया। सुना है कि वह राटा को सदा के लिए छोड़ गया है क्योंकि वह उससे प्रेम करती है। और जिस व्यक्ति में प्रेम जैसी कमज़ोरी हो, वह बड़ी उपेक्षा से ठुकरा दिया जाता है।...मिरच्चू तेज़ाबी का कहना है कि पूस के एक ठंडे नीले

धुँधलके में उसने फरायालाल को अपनी बिरादरी की एक स्त्री के साथ जाते देखा था। वही स्त्री—कौड़ी, जो अबूबकर रोड के मकानों में से गमले उठाया करती थी। उन दिनों फरायालाल बेकार था। बेकार लोगों के *मस्तिष्क में कुढ़ने या ढेर-सा प्रेम करने के अलावा* कुछ नहीं समाता। कुछ लोगों ने फराया को कोट पुतली में चटाइयाँ बनाते हुए देखा है, पास ही कौड़ी एक अन्य व्यक्ति से मुस्करा-मुस्कराकर बातें कर रही थी....राटा फिर भी फरायालाल को दिल से चाहती है। यह प्रेम का उन्माद कभी छोड़ने से छूटता है!....और राटा भीग रही है।

राटा की घोड़ी अबूबकर रोड पर हमारी कोठी के सामने घूम रही है। वह उसका अमानिशा जैसा रंग!....सिर्फ़ उसके हिनहिनाने और कभी-कभी बिजली कौंधने से उसके अस्तित्व का पता चलता है। सुबह से बेचारी को दाना नहीं दिया गया, न उसकी मोच वाली टाँग पर हल्दी ही लगायी गयी है। भूख की मार से विवश होकर और बिगड़कर वह आवारा हो रही है। शायद फराया को ढूँढ़ती फिरती होगी। फराया—जो उसे भी छोड़कर कौड़ी के साथ चला गया है। कौड़ी जो कोट पुतली में किसी दूसरे मर्द के साथ मुस्करा-मुस्कराकर बातें कर रही थी। एक समय एक दिल में मुश्की घोड़ी रह सकती है या कौड़ी, कौड़ी या राटा....और भूखी मुश्की घोड़ी हिनहिनाती है जैसे कभी सिकन्दर से छूटने पर बूसफ़ेलेस हिनहिनाता था।

राटा अपने सिर से बोरिये की ओढ़नी उठाकर पूछती है:

"बाबू जी—आपने यहाँ रामी नहीं देखी?........रामी....मेरी मुश्की घोड़ी।"

मैंने कहा, "रामी! कौन रामी?........अच्छा रामी, तुम्हारी मुश्की

घोड़ी। अरी वह दराँटे की बाड़ के पीछे तो खड़ी है। तुम्हें दिखायी नहीं देती क्या ?"

राटा आँखों को सिकोड़-सिकोड़कर बाड़ की तरफ़ देखती है। सच यह है कि जब खुलते हुए मुश्की रंग की घोड़ी वर्षा में शाम के वक्त भीग जाती है तो वह भी काली रात का एक अंग बन जाती है और रो-रोकर जोत-खोयी कमज़ोर आँखों के लिए उसे साँझ के अँधेरे या अँधेरी साँझ से अलग करना बहुत मुश्किल हो जाता है....वर्षा की रिमझिम सिरस की लम्बी-लम्बी फलियों की खड़खड़, गिरते हुए पत्तों के विलाप, बादल की गरज, बतखों की बत-बत, मेंढकों की टर्र-टर्र, परनालों के शोर, उस कुतिया की कूँ-कूँ जिसने अभी-अभी सात बच्चों का झोल जना है और एक बच्चे को मुँह में पकड़े किसी सूखी नर्म और गर्म जगह की खोज में है। इन सब के शोर में भूखी घोड़ी की हृदय-विदारक हिनहिनाहट अलग सुनायी देती है।

पराशर कहता है, "मैं भीग रहा हूँ....और वह भी भीग रही है।"

माँ बिगड़ते हुए कहती है, "गीला....गीला....गीला....तन्दूर बिलकुल गिरने वाला हो गया है। ऐं ? यह मुई कुतिया तन्दूर में छिपी बैठी है ! मेरा तन्दूर गिर जायगा। यह असमय की वर्षा, राम रे....!"

नन्हे बिशन का फ्राक आँगन में गिरा पड़ा यों दिखायी देता है जैसे कोई मरी हुई फ़ाख्ता हो। माँ नाराज़ है कि मैंने बिशन का फ्राक क्यों नहीं उठाया, हालाँकि राटा की घोड़ी पकड़ने में मैं सिर से पाँव तक भीग गया। माँ इसलिए भी क्रुद्ध है कि मैं पराशर जैसे आवारा नौजवान के साथ वर्षा में लंगोटा बाँधकर नहाने के लिए चला हूँ। माँ का विचार है कि मैं भी उसके साथ रहकर आवारा हो जाऊँगा। असल में माँ के माथे पर बल इसलिए हैं कि मैंने राटा को मुश्की घोड़ी पकड़ने

में सहायता दी है, घोड़ी को शाम के अँधेरे से अलग करते हुए उसकी अयाल राटा के हाथ में दे दी है और यह करते हुए मैं उससे छू गया हूँ।

मैंने कहा, "इसी प्रायश्चित में तो मैं नहा रहा हूँ, माँ !"

सच तो यह है कि इस प्रकार की अपवित्रता को मैं पसन्द करता हूँ। पराशर का क्या, वह तो हर प्रकार की अपवित्रता को पसन्द करता है....काश ! फरायालाल कभी न आये और राटा को हर एक काम के लिए हमारा आभारी होना पड़े। क्या वह घोड़ी ही पकड़वायेगी ? और कोई काम नहीं कहेगी ?

माँ कहती है, लोहार, बढ़ई और चमड़ा रँगने वाले एक ब्राह्मण को चौबीस क़दम से, चारूमन बोने वाले अड़तालीस क़दम से और मोटा माँस खाने वाले चौंसठ क़दम से भ्रष्ट कर सकते हैं। मगर मैं माँ से कहता हूँ, "माँ इन लोगों की वजह से तो हम ज़िन्दा हैं, ब्राह्मण खेती की यह लोग बाड़ हैं....और फिर सत्य को बचाने के लिए थोड़ी-बहुत बुराई आदि काल ही से चली आ रही है।" माँ कहती है, "कलजुग है बेटा, घोर कलजुग !"

दिखाने के लिए माँ बिशन से बातें करती है किन्तु वास्तव में उसका तात्पर्य सब कुछ मुझे सुनाना होता है, "महायज्ञ ब्रह्मा का एक दिन है, कृत, त्रेता, द्वापर इतने लाख वर्षों के हैं, कलजुग चार लाख बत्तीस हज़ार वर्षों का है। पिछले वर्ष चैत के महीने में कलजुग के सिर्फ़ पाँच हज़ार छब्बीस वर्ष बीते हैं। राम जाने अभी कितने बाक़ी हैं—और यह असमय की वर्षा !"

"वर्षा से काफ़ी सर्दी हो गयी है," मैंने कहा।

"हाँ भाई....मेरे तो दाँत बजने लगे हैं....चलो बरामदे में चलें।"

"लेकिन....अभी बहुत समय तो नहीं हुआ है।"

"चाय बनवा दो न—सर्दी हो रही है।"

"चाय बन जायेगी, सिगरेट नहीं मिलेंगे।"

"कोई बात नहीं! बीड़ियाँ जो हैं मेरे कोट की जेब में।"

"हमारे टी-सिंडीकेट को आजकल वर्षा बड़ी फ़ायदेमन्द है।"

"हाँ—चाय के पौधों की ढलवान दक्षिण की ओर है। अबूबकर रोड का सारा पानी उधर नहीं जाता। मगर ज़्यादा बौछाड़ चाय के पौधों के लिए हानिकारक है। जड़ें गल जाने की आशंका है। हल्की-हल्की फुहार का तो कहना ही क्या....कुछ भी हो, यह वर्षा एसोशिएटिड टी-सिंडीकेट के लिए बड़ी फ़ायदेमन्द साबित होगी। हमारी आमदनी बढ़ जायगी। क्यों? है न?"

"हाँ!"

"ईश्वर अपनी दया वर्षा के रूप में भेजता है।"

"हाँ—दया....आमदनी—अरे राटा की झोंपड़ी की खपरैल उड़ रही है!"

"ईश्वर की दया....।"

अब वर्षा बहुत तेज़ होने लगी है, जैसे सब की सब अबूबकर रोड पर ही बरस पड़ेगी। नकटेसर के पत्ते बतख़ के परों की तरह भीगते नहीं, पानी की बूँदें उन पर पारे की तरह लुढ़कती हैं। कहीं-कहीं अटककर एक गोल हीरे की तरह दिखायी देती हैं। कुछ देर बाद एक बूँद और वहीं टपकती है तो हीरा ज़्यादा गोल और बड़ा हो जाता है। किन्तु रात की रानी के कोमल फूल इस बौछाड़ को नहीं सह सकते.... अबूबकर रोड के दोनों ओर की कोठियों में बसने वाले नकटेसर के पत्तों की भाँति हैं। वर्षा उनकी स्लेट की छतों पर से बहती, लुढ़कती

हुई अबूबकर रोड पर आ रही है। वर्षा की बूँदें उनके लिए गोल हीरे हैं....मगर रात की रानी—राटा, सिर फेंक देती है। कभी-कभी सिर उठाकर खपरैल को बाँधना शुरू कर देती है और अपने भीगते हुए बालों के कारण बूगन विलिया की सुन्दर बेल-सी दिखायी देती है।

पहले बेचारी मुश्की घोड़ी को ढूँढ़ती फिरती थी। अब यह उसके लिए एक नयी मुसीबत है। झोंपड़ी की सारी छत से पानी बहने लगा है। बोरिये की ओढ़नी तो रस्मी-सी ओट है। उसके सारे कपड़े भीगकर शरीर के साथ चिपक गये हैं। शाम के अँधेरे में जब बिजली चमकती है तो वह नग्न-प्रायः दिखायी देती है।

वर्षा में ईश्वर की दया से कोई नर्म-गर्म कपड़े पहनता है तो कोई नंगा हो जाता है, किसी की आमदनी दुगुनी हो जाती है तो किसी की खपरैल उड़ जाती है....कोई गर्म कपड़ों में रात बिताता है तो कोई तन्दूर के पास!

बूगन विलिया की बेल को जब तेज़ हवा हिलाती है तो ऐसा दिखायी देता है जैसे कोई सुन्दरी सिर धोने के बाद छत पर अपने चमकीले काले बालों को ज़ोर से निचोड़कर दोनों हाथों से फटकारती हो। राटा का मूर्ख, आलसी—पागल लड़का झोपड़ी में सोया पड़ा है, बुझते हुए चूल्हे के पास गर्म होकर—अगर वह जागता होता तो मुश्की घोड़ी पकड़ने के लिए उसकी माँ को मेरा आभारी न होना पड़ता....फत्तायालाल तो चला ही गया है। काश, वह आलसी लड़का हमेशा की नींद सो जाये!

शायद राटा खपरैल बँधवाने के लिए हमें बुलाये। वर्षा के कारण उसके बदन से चिपके हुए कपड़े, बिजली की चमक में उसका बदन कितना सुन्दर और सुडौल दिखायी देता है। लेकिन माँ....माँ कहती

है, कलजुग है।

—कलकत्ते की मार्केट में चाय कितनी बिकेगी, कितनी देसावर को जायेगी! मेरी आमदनी बढ़ जायेगी। पराशर की भी....लेकिन वह कम्बख़्त बीड़ियाँ पियेगा, चाय के प्यालों के प्याले और शराब और....

"तुझे निकले गिल्टी, हैज़े के तोड़े....सोये-का-सोया रह जाये तू," राटा अपने छोकरे को गालियाँ देती है।

राटा को चाय की ज़रूरत भी नहीं। गालियाँ देते हुए उसके बदन में काफी गर्मी आ गयी है। वह निकम्मा, सुस्त लड़का उसके साथ खपरैल भी तो नहीं बँधवाता, आराम से बुझते हुए चूल्हे के पास पड़ रहा है। पानी के छींटे पड़ते हैं तो टाँगें सिकोड़ लेता है। जब अन्दर पानी-ही-पानी हो जायगा तो वह आँखें मलता हुआ उठेगा। सिर्फ़ यह कहेगा, "माँ क्या बात है जो इतना शोर मचा रखा है? चैन से सोने भी नहीं देती....।" जैसे कोई बात ही नहीं! वह तो शायद यह भी कहे कि मैं ऐसी औरत के घर क्यों पैदा हुआ जो ऐसी-ऐसी गालियाँ देती है, जिसे मेरी कोई ज़रूरत नहीं, कहती है सोये का सोया रह जाये तू....। वह बेवक़ूफ़ क्या जाने कि जब माँ यह कहती है कि तू सोये का सोया रह जाये तो उस समय वह उसे सदा की नींद से बचाने के लिए तूफ़ान और वर्षा में अकेले दम बग़ैर किसी सहायता के अपनी जान तक लड़ा देती है।

अभी कड़ी भूख के कारण उसकी मुश्की घोड़ी हिनहिना रही थी जैसे सिकन्दर से अलग होने पर बूसफ़ेलेस हिनहिनाता था। किन्तु अब वह चुप है। शायद उसने राटा की बेबसी को देख लिया है और फराया के प्यार को—अब वह कभी नहीं हिनहिनायेगी।

पराशर बोला, "वह एक बार मदद के लिए इशारा तो करे।"

"हाँ—और हम दोनों....," मैंने जवाब दिया।

"मैं कहता हूँ, क्यों न हम लोग खुद ही चले जायँ उसकी मदद को?"

"मगर माँ कहती है कलजुग को सिर्फ़ पाँच हज़ार वर्ष हुए हैं। राम जाने कितने अभी बाक़ी हैं।"

फिर वही गालियाँ....

"तुझे आवे ढाई घड़ी की....निकले तेरा जनाज़ा ललचातावा.... गोर में पटे....खून थूके तू....।"

शायद वह छोकरा सोचता होगा, मैं क्यों इस औरत के घर पैदा हुआ जो मुझे गोर (क़ब्र) में भेजना चाहती है। वह बेवक़ूफ़ क्या जाने कि वास्तव में वह उसे पानी की क़ब्र से बचाने के लिए अपनी जान तक लड़ा रही है। वह दस वर्ष का निकम्मा, सुस्त छोकरा अब तक अपनी जगह से नहीं हिला, सिर्फ़ इसलिए कि राटा को उससे मुहब्बत है जिसको वह अच्छी तरह जानता है। वही राटा की ज़िन्दगी का सहारा है, वही उसकी आँखों की ज्योति है। इसीलिए तो वह बेबस और अन्धी है....अगर राटा फरायालाल से प्रेम न करती, अगर वह इस छोकरे पर अपनी सारी आशाएँ न लगा देती तो सुखी हो जाती।

अबूबकर रोड चलती हुई कोयले की खान में जाती दिखायी देती है। बहाव के ख़िलाफ़ एक किसान भीगता हुआ धीरे-धीरे इधर ही आ रहा है। उसके हाथ में बैल की रस्सी है। शायद वह बैल को कहीं से चुरा लाया है। शायद वह चाहता है कि हम उसे बरामदे में कुछ देर ठहरने के लिए जगह दे दें। और यह सम्भव नहीं। कौन जाने

बैल गोबर से बरामदे का फ़र्श खराब कर दे। और माँ....फिर चोरी के माल को अपने पास रखना....

"बाबू जी सलाम," किसान बोला।

"सलाम," पराशर ने भुनभुनाते हुए कहा।

फिर वह अपने काँपते हुए हाथों से एक गीला काग़ज़ पराशर के हाथ में दे देता है—परवाना राहदारी....यह इस बात का सबूत है कि बैल चोरी का माल नहीं, अपना है, जिसे वह ताल महल की मंडी में बेचने के लिए जा रहा है—

बायस तहरीर आँका

"एक रास बैल जिसके सींग अन्दर को मुड़े हुए हैं, पूँछ के काले बालों में सफ़ेद........"

—और बाक़ी का वर्षा ने धो दिया है। कितने बेतुके होते हैं यह किसान लोग—पहले सींग और फिर दुम—इनके लिए जैसे सींगों और दुम के बीच में कोई जगह ही नहीं। बदन का रंग पहले आना चाहिए था। मखमली बदन! जो बारिश में गीला होकर सफ़ेद साटन की तरह दिखायी देता है। अँधेरे में उसका सफ़ेद रंग दिखायी देता है, मगर जब बिजली चमकती है तो बैल बिजली का एक अंग बन जाता है....बैल सारा ज़ोर लगाकर रँभाता है, जैसे शिवजी को देखकर उनका नन्दी प्यार से रँभा रहा हो। बैल सुबह से भूखा है, किन्तु अपने बूढ़े कुरूप मालिक को प्यार किये जाता है यद्यपि अपनी पशु-बुद्धि से जानता है कि बूढ़ा उसे कल ताल महल की मंडी में बेच डालेगा। हाय! यह प्रेम का उन्माद कभी छोड़ने से छूटता है?

"क्यों बेचते हो इतने सुन्दर बैल को?"

"बाबू जी फ़सलें तबाह हो गयी हैं....और लगान देना है....उफ़!

यह असमय की बरखा ! क्या मैं अन्दर आ जाऊँ, इस छत के नीचे ?"

"ऊँ-हूँ—तुम्हारा यह बैल गोबर से बरामदे को खराब कर देगा।"

"मैं साफ़ कर दूँगा बाबू जी—शीशे की तरह....बैल सुबह से भूखा है। इतनी सर्दी कहाँ बर्दाश्त करेगा। और फिर दूसरी बात नहीं। अगर यह परवाना राहदारी धुल गया तो यह बैल चोरी का माल समझा जायेगा। ताल महल का थानेदार जहान खाँ बड़ा कड़वा आदमी है, मार-मारकर अधमरा कर देगा। बैल जाता रहेगा। ताल महल में इस बैल की क़ीमत पर ही सारी आशाएँ लगा रखी हैं....हाय यह असमय की बरखा...."

"जाओ....," पराशर ने कहा, "हम तुम्हें यहाँ जगह नहीं दे सकते....जाओ....।"

किसान सहमकर चला गया। कभी-कभी पीछे मुड़कर देख लेता, जैसे रात को हमारे यहाँ ही सेंध लगायेगा। 'अगर वह सेंध लगाये भी तो उचित होगा,' मैंने सोचते हुए कहा।

बैल अबूबकर रोड के चौक में गिर पड़ा है। वह किसान के उठाये....किसी के उठाये न उठेगा। वह नन्दी गण की तरह किसान को देखकर कभी नहीं रँभायेगा।

फिर मैंने पराशर से कहा, "चाय तैयार है भाई—कितने प्याले पियोगे ?"

"छः !"

"पारा-ए-शर (आफ़त का टुकड़ा) ....और दर्जन बीड़ियाँ ! कह दो हाँ।"

"ज़्यादा !"

"छी !"

—वर्षा और भी तेज़ हो रही है और राटा की गालियों की वर्षा भी !

राटा की खपरैल गिर चुकी है। दीवारों में छेद हो गये हैं। पास ही के एक सेठ के तिमंज़िले मकान का परनाला राटा की झोंपड़ी पर गिरने लगा है। झोंपड़ी के इर्द-गिर्द अबूबकर रोड पर चलते हुए पानी को देखकर प्रलय की याद आती है। क्या हम राटा की मदद कर सकते हैं? बावजूद कलजुग के....हमारे बरामदे के सिवा और कोई आश्रय भी तो पास में नहीं है। पराशर खुश है। उसके पास चाय है, बीड़ियाँ हैं....और निराश्रित राटा इधर आ ही जायेगी....।"

राटा चारों ओर देख रही है। पराशर कहता है :

"अभी वह कहेगी, मुझे अपने दामन में छिपालो बाबू जी।"

"कभी नहीं," मैंने सिर हिलाते हुए कहा।

"तो इसके सिवा उसे चारा ही क्या है?"

"यह बरखा का दामन क्या उसके लिए कम है? राटा की-सी औरत को मैं जानता हूँ। जब किसी ऐसे व्यक्ति के लिए इज़्ज़त के दामन तंग हो जाते हैं....तो अपने आप उसके लिए एक बड़ा आँचल खुल जाता है....।"

और राटा की तो मुट्ठियाँ बन्द हैं। कभी-कभी वह दाँत पीसते हुए चीखती है :

"जवान मरे....कलमुँहे....मैंने तो रो लिया तुझे बेचैन !"

★

मौत का राज़

इस बेतुकी और ऊबड़-खाबड़ ज़मीन के उत्तर की ओर हरे-भरे टीलों के आँचल में मैंने गेहूँ की बत्तीसवीं फ़सल लगायी थी और ग्रीष्म कालीन सूर्य की जानलेवा गर्मी में पकती हुई बालियों को देखकर मैं खुश हो रहा था। गेहूँ का एक-एक दाना पहाड़ी दीमक के बराबर था। एक बाली को मसलकर मैंने एक दाना निकाला। वह किनारों की तरफ़ बाहर को कुछ पिचका हुआ था। उसकी बीच की लकीर कुछ गहरी थी। यह इस बात का सबूत था कि गेहूँ अच्छा है, उसमें पौष्टिकता अधिक है और गोरखपुर की मंडी में इस वर्ष उसकी बिक्री से लाभ होगा।

मेरे विचारों में कुछ एकाग्रता आ रही थी। उस समय ज़िन्दों में से मेरे पास कोई न था। आप पूछ सकते हैं कि यदि ज़िन्दों में से कोई न था तो क्या मुर्दों की याद तुम्हारे दिल में थी?—मेरा उत्तर 'हाँ' होगा। मैं एक और बात भी आप से आग्रह पूर्वक मनवाना चाहता हूँ। और वह यह है कि मैं मुर्दों की कल्पना ही नहीं कर रहा था, बल्कि उनको अपने सामने, पीछे, दायें और बायें कथाकली जैसा

नाच नाचते, हँसते और भय से काँपते हुए देख रहा था। जैसे आपकी दाढ़ी का बाल मुझे अलग से दिखायी देता है और जैसे मैं आपकी गर्मी से झुलसी आँखों के लाल डोरे देख रहा हूँ इसी तरह उन्हें देख रहा था। उनमें से किसी का चेहरा जम्मुई मोतिया की उस कली की तरह खिलकर चमक रहा था जिसका मुँह सुबह-सवेरे कश्मीरी बहार की ओस ने धो दिया हो, और किसी के चेहरे पर झुर्रियाँ और गहरी-गहरी लकीरें थीं। शायद वह किसी सफल जीवन के अनुभव की निशानियाँ थीं।

न वे गेहूँ के खेत के किनारों पर खेल रहे थे, न उस बत्तीस वर्षीय शीशम के नीचे, जिसके घने सायादार फैलाव की छाया में मैं आलथी-पालथी मारे बैठा था, अपने हल्के-हल्के पाँवों को नचा रहे थे, बल्कि वे स्वयं मेरे शरीर के अन्दर थे....आप हैरान क्यों खड़े हैं। आप पूछते हैं मैं कहाँ था?....सुनिए तो....मैं मन की उस स्थिति में था जिसे निमग्नता की अन्तिम सीमा कहना चाहिए। मैं स्वयं अपने शरीर से अलग होकर उसे यों देख रहा था जिस तरह पुरानी कहानियों का राजकुमार किसी ऊँचे हरे-भरे टीले पर खड़ा दूर से उस राजकुमारी के महल का अनुमान वहाँ से उठते हुए धुएँ से लगाये, जिसने अपने विवाह के लिए कोई शर्त लगा रखी हो।

वे नाचते, हँसते, काँपते लोग मेरे पुरखे थे....बच्चा अपने माँ-बाप की तस्वीर होता है। मेरा बाप अपने बाप की तस्वीर था। इस लिए मैं अपने बाबा की तस्वीर भी हो सकता हूँ। और इस प्रकार विकास की मंज़िलें तय करने के कारण यदि अपने आदि पुरखों की साफ़ नहीं तो धुँधली-सी तस्वीर ज़रूर हूँ....भारतीय सभ्यता दो नस्लों से शुरू हुई। एक द्रविड़, दूसरी आर्य। मैं आर्य नस्ल का हूँ। मेरा लम्बा क़द, गोरा

रंग, काली आँखें और संवेदनशील, प्रसन्न चित्त और कुछ अंध-विश्वासी होना इस बात का सबूत है—यह बात मालूम करने की मेरी तीव्र इच्छा थी कि मृत्यु का रहस्य क्या है, मरते समय मरने वाले पर क्या प्रक्रिया होती है। मुझे यह विश्वास दिलाया जा चुका था कि शरीर और आत्मा अमर हैं। ऐसी दशा में यदि वह मृत्यु की प्रक्रिया में अपना रूप बदलते हैं तो उस समय उनकी क्या अवस्था होती है—आखिर मरने वाले गये कहाँ ? वे जा भी कहाँ सकते हैं, सिवाय इस बात के कि वे किसी अन्य रूप में आ जायें, जिसे हम लोग आवागमन कहते हैं, क्योंकि विभिन्न योनियों से गुज़रने के बाद उस कण को, जिससे हम पैदा हुए हैं, मनुष्य का रूप मिलता है।

यह बात सुनकर शायद आप बड़े ही चकित होंगे कि मैं अपने सामने अपनी पैदा होने वाली औलाद को भी देख रहा था। मेरे सामने एक घुँघराले काले बालों और चमकते दाँतों वाला हृष्ट-पुष्ट बच्चा आया, जो आज से हज़ारों वर्ष बाद पैदा होगा और जो मेरी एक धुँधली-सी तस्वीर था। मैंने उसे गोद में उठा लिया और छाती से लगा, भींच-भींचकर प्यार करने लगा। उसे प्यार करते समय मुझे सिर्फ़ यही महसूस हुआ जैसे मैं अपना दायाँ हाथ बायें कन्धे और बायाँ हाथ दायें कन्धे पर रखकर अपने आप को भींच रहा हूँ। उस बच्चे ने कहा :

"बड़े बाबा....प्रणाम....मैं जा रहा हूँ।"

मेरा होने वाला बच्चा और पूर्व पुरुष सब वापस जा रहे थे। इस निमग्नता की दशा में मैं अभी तक दूर खड़ा यही महसूस कर रहा था कि मेरा शरीर पृथ्वी का एक ऐसा भाग है, जिसमें मेरे आदि पुरुषों की गुफाएँ और भावी पीढ़ियों के शानदार महल हैं, जिनमें बरसों के मुर्दे और नये आने वाले अपने पुराने और नये तरीकों से धड़ाधड़ प्रवेश

कर रहे हैं।

....घबराइए नहीं, और सुनिए तो....यह मेरी बातें, जो ऊपर से पागलों की-सी मालूम होती हैं, वास्तव में बड़ी श्रम-साध्य....मुझे कुछ समझा लेने दो—फिर मैं आपको साहित्यिक निबन्ध में उपमा देने का ढंग बताऊँगा। कल ही आप कह रहे थे कि पेड़ों पर गिद्ध शाम के वक्त बैठे यों दिखायी देते थे जैसे किसी ऊँचे शीशम पर सुनहरी तरबूज़ औंधे लटक रहे हों—कितनी भोंड़ी उपमा दी आपने !....

यह तो मैं जानता था कि आत्मा ही नहीं, शरीर भी नष्ट नहीं होता। किन्तु इस बात को देखने की एक आग-सी हर समय दिल में सुलगती रहती थी कि मृत्यु की अवस्था में, प्रकट समाप्त होते हुए व्यक्ति, यानी कण की सामूहिक स्थिति, को किन रचनात्मक और ध्वंसात्मक दशाओं से गुज़रकर दूसरे रूप में आना पड़ता है....यानी ....आखिर....मौत का राज़ क्या है?

वह महान कण, वह परम तत्व, जो सारी पृथ्वी और आकाश की शक्तियों का मूल है, कैसा सुसंगठित है। उदाहरणार्थ, ग्रहों की यात्रा की व्यवस्था को लीजिए। यदि इनमें से कोई भी ग्रह अपने विशेष मार्ग से एक इंच भी इधर-उधर हट जाय तो कैसी मुसीबत हो। चन्द्रग्रहण के अवसर पर हम लोग दान-पुण्य भी करते हैं तो इसीलिए कि वही एक ऐसा समय हो सकता है जब कि ग्रहों का गुरुत्वाकर्षण से इधर-उधर होकर और आपस में टकराकर परम तत्व बन जाना सम्भव है। हम आर्य—संवेदनशील, मनमौजी और अंधविश्वासी लोग—यह नहीं चाहते कि हम कोई बुरा काम करते हुए तबाह हो जायें और परम तत्व का एक भाग बन जायें। दान-पुण्य से अच्छा काम और क्या होगा !

....आप इसे वेदांत, वहम और शुष्क और कठिन विषय कहेंगे,

किन्तु यह इन तीनों से ऊँची चीज़ है। हाँ, हाँ! आपने पूछा था कि महा-कण क्या है—यह जीव की आरम्भिक स्थिति है। यह स्त्री और पुरुष दोनों में सजग है, आकाश और पृथ्वी की सारी शक्तियों का केन्द्र है। उसकी परिभाषा इससे अच्छी शायद कोई नहीं कर सकता। इस सम्बन्ध में एक अमान्य कल्पना, जो ऊपर से बकवास दिखायी देती है किन्तु है बड़ी व्यापक और ठीक—दोहरा देना चाहता हूँ। वह अमान्य कल्पना गणित भौतिक-शास्त्र के एक बड़े विशेषज्ञ* ने बतायी थी :

"कण....परम तत्व ...हम नहीं जानते क्या....क्या कुछ करता है—हम नहीं जानते कैसे !....?....!!"

शायद गणितज्ञों ने गणित के नियम गुणा-भाग इस कण से ही सीखे हैं। वह दो से चार, चार से आठ और आठ से सोलह गुना हो जाता है....और फिर आश्चर्यजनक रूप से हज़ारों से एक....यह तो सब जानते हैं कि वह यह से वह हो जाता है। मगर इस बात से रहस्य का पर्दा नहीं उठा कि वह कैसे? जिस दिन यह रहस्य का पर्दा उठेगा तो मृत्यु का भेद खुलने में शेष ही क्या रह जायेगा?

कुछ दिन हुए मैं इसी मानसिक उद्विग्नता में फँसा हुआ था और ग्रीष्मकालीन सूर्य गेहूँ की बालियों को पका रहा था। बालियाँ बिलकुल सूख चुकी थीं और उनके टूँड़ इतने सूख गये थे कि एक-एक बाल काँटे की तरह चुभता था, कुछ दबाने से बाल अपने आप झड़ने लगते थे। सिट्टे को मसलते-मसलते उसका एक बाल मेरे नाखून में उतर गया। और लाखों कण जिनकी मैं सामूहिक स्थिति हूँ, उनमें से एक कण को जो व्यक्तिगत रूप में महाकण से कम नहीं, उसने आगे ढकेल दिया। वह कण, जो आगे ढकेला गया था, न जाने पूर्व काल में मेरा

* Eddington—in his Gifford Lectures

कोई पुरखा था या भावी पीढ़ियों में से कोई—मैं जान न सका। फिर भी सिट्टे का बाल उन दोनों में से कोई न था। वह एक बाहरी वस्तु थी जिसका मेरी शारीरिक व्यवस्था में चले आना उस मुसाफ़िर का अनुचित हस्तक्षेप जैसा था जो 'आम रास्ता नहीं है' की सूचना पढ़ते हुए भी अन्दर घुस आये। यह पूर्ण निषेध के कारण ही था कि दर्द की टीस उठ-उठकर मुझे कँपा रही थी।

भला जब एक कुत्ता अपनी गली में दूसरे कुत्ते को नहीं आने देता तो मेरे पूज्य आदि पुरुष और युग-निर्माता शानदार भावी पीढ़ियाँ इस बाहरी वस्तु के हस्तक्षेप को कब सहन कर सकती थीं। उफ़ दर्द! सिवा उस वस्तु के—उस कण के जो हमारी भावी पीढ़ियों की अपने गुण-भाग के साथ आत्मिक और शारीरिक मूर्ति बने या हमारे पुरखों से हमें उत्तराधिकार में मिले, किसी और वस्तु का आना निषिद्ध है। शरीर और आत्मा दोनों उस समय तक चैन नहीं पाते जब तक बाहरी वस्तु को हर एक कष्ट सहकर शरीर के बाहर नहीं फेंक दिया जाता।

वह कण तो प्रत्येक गति से प्रभावित होता है। यदि आपने ग़लत काम करके, अपने शरीर और आत्मा के अनुचित उपयोग से उन्हें किसी भाँति क्षीण और अशक्त बना दिया है तो आपके वे कण, जिन्हें आपके बेटे-पोते बनना है क्षीण और अशक्त दशा में आपके सामने आकर आपके मानसिक कष्ट का कारण बनेंगे। वे उसे भाग्य कहेंगे। किन्तु यदि आप मुझसे भाग्य की परिभाषा पूछें तो वह यह है: "कुसंग और सत्संग के प्रभाव के अतिरिक्त जो चीज़ पूरी ज़िम्मेदारी से हमारे बुज़ुर्गों ने हमें दी, वह हमारा भाग्य है।" इसलिए आप जो भी काम करें, सोचकर करें। उँगली भी हिलाएँ तो सोचकर....याद रखिए, यह मामूली बात नहीं है....। अब शायद आप कण की परिभाषा और

कार्य से कुछ परिचित हो गये हों।

*

जिस दिन सिट्टे का बाल मेरे नाख़ून में गड़ा था, मैं बड़ा बेचैन रहा—शाम को मैं घबराया हुआ पास ही शहर के एक बड़े ज्योतिषी के पास गया। उसने मेरी राशि आदि देखते हुए भविष्यफल बताया कि बृहस्पति का प्रभाव तुम्हें सारी आपदाओं से सुरक्षित रखेगा और तुम्हारी आयु बहुत लम्बी है। शायद उसका विचार है कि लम्बी उम्र बताने से यह मालदार ज़मींदार अपने हाथ की चमकती हुई सोने की अँगूठी उतारकर मुझे दे देगा। किन्तु यह बात सुनकर मुझे बड़ी बेचैनी हुई। निराश होकर मैंने उसकी थोड़ी-सी फ़ीस—एक नारियल, आटा और पाँच पैसे—दिये....मैं तो मरना चाहता था और देखना चाहता था कि इस प्रक्रिया में मुझ पर क्या प्रभाव पड़ता है। मुझे इस बात का भी शौक़ था कि मैं उस रहस्य को, जिसके बारे में बड़े-बड़े दार्शनिक और भौतिक-शास्त्र के पंडित कह चुके हैं—"वह करता है कुछ....हम नहीं जानते कैसे....।" खोल दूँ और संसार में पहला व्यक्ति बनूँ जो दूसरी योनि में आते हुए अपनी आश्चर्यजनक स्मरण-शक्ति के द्वारा संसार को बता दे कि कण इस स्थिति से गुज़रता है और वह इस शक्ल में बदलता है।

इस बात के निरीक्षण के लिए खुद मरना ज़रूरी था, मगर विद्वान् ज्योतिषी ने इसके विपरीत लम्बी आयु की भयानक सूचना दी थी। आत्मघात एक पाप था, जो न केवल मेरे पुरखों के नाम पर धब्बा लगाता था, बल्कि वर्तमान संतान और भावी पीढ़ियों पर भी प्रभाव डालता था, इसलिए मैंने आत्महत्या के विचार को बिलकुल तज दिया।

मैं जंगल के एक टीले पर बैठा था। वहाँ से गंडक की किसी सहायक नदी के एक झरने की आवाज़ साफ़ तौर पर कानों में आ रही थी। और चूँकि मुझे वही बात खुश कर सकती थी, जो मेरे दिल को बेचैन कर दे, इसलिए गंडक की सहायक नदी के झरने की दिल बैठा देने वाली आवाज़ मुझे भा रही थी। एक पत्थर को उलटाते हुए मैंने बहुत से कीड़े-मकोड़े देखे। फिर मैंने कहा :

"शायद इस झरने की आवाज़ और मौत की आवाज़ में कुछ साम्य हो—।" शाम हो चुकी थी। सूरज बिलकुल डूबा भी नहीं था कि सिर पर चन्द्रमा का ज्योतिहीन और काग़ज़ी शरीर दिखायी देने लगा। पत्थरों में से एक जला देने वाली भड़ास निकल रही थी। अचानक मुझे एक ख़याल आया। एक तरकीब सूझी जिससे मैं कण के रूप-परिवर्तन का निरीक्षण कर सकता था, यानी मृत्यु की प्रक्रिया देख सकता था। हम उसे आत्महत्या भी नहीं कह सकते। वह केवल निरीक्षण की अन्तिम स्थिति है। वह यह—कि गंडक की सहायक के झरने से आध मील बहाव की ओर, जहाँ पानी की भयंकर लहरें एक पथरीले टीले से टकराकर अपना दम तोड़ते हुए दक्षिण, पूर्व की ओर गंडक से मिलने के लिए बह निकलती हैं, नहाने के लिए उतर जाऊँ और अचेत-रूप से पानी के अन्दर ही गहराई और तेज़ बहाव की ओर धीरे-धीरे चलता जाऊँ और यह स्थिति आये कि या मेरा पाँव किसी पानी की झाड़ी में अड़ जाये या कोई जानवर मुझे खींच ले जाये या पानी का कोई भयानक रेला वह प्रक्रिया मुझे दिखाये जिससे कण को कोई अन्य रूप मिले। शायद आप इसे भी आत्महत्या कहें, किन्तु इस इच्छाहीन प्रक्रिया को मैं तो स्वाभाविक मृत्यु कहूँगा।

इसलिए मरने के बहुत पहले मैंने अपनी कल्पना में कलखल—

गंगा माई के चरणों पर सिर रखा और सौगंध ली कि मैं इस इच्छा-हीन कार्य को अवश्य पूर्ण करूँगा ।

*

गंडक की सहायक नदी झरने से एक मील बहाव की ओर भी उसी तीव्र गति से बह रही थी यद्यपि सीधी चट्टान से टकराकर उसकी लहरें अपना दम तोड़ चुकी थीं ।

मैं मुक्तिनाथ और धौलागिरि के आस-पास की पहाड़ियों से आये हुए बर्फ़ीले पानी में कमर तक घुस चुका था । मैं जल्दी-जल्दी आगे न बढ़ना चाहता था क्योंकि इसका अर्थ अपने को जान-बूझकर मार डालना था । कुछ आगे बढ़कर मैंने धीरे-धीरे पाँव को अर्धवृत्त के रूप में घुमाना शुरू किया और लगभग पाँच मिनट तक ऐसा करता रहा ताकि पानी का कोई रेला मुझे बहा ले जाये या कोई तेंदुआ या घड़ियाल टाँग पकड़कर मुझे पानी में घसीट ले । किन्तु ऐसा न हुआ ।

....अचानक मेरा पाँव पानी की एक झाड़ी में उलझ गया और मैं पानी में ग़ोते खाने लगा । मेरा पाँव फिसला और दूसरे ही क्षण पानी के रेले बड़े ज़ोरों से मेरे सिर से गुज़र रहे थे ।

कुछ देर तक तो मैंने अपना दम साधे रखा । लेकिन कब तक ? बेहोश होने के पहले मुझे कुछ बातें याद थीं कि मेरी टाँगें और हाथ तेज़ पानी में काँपते हुए इधर-उधर चल रहे थे । बाहर निकलती हुई साँस से कुछ बुलबुले उठकर सतह की तरफ़ गये । मेरे मस्तिष्क में जीवित रहने की एक तीव्र इच्छा ने करवट ली । इस प्रयत्न में मैं किसी चीज़ को पकड़ने के लिए पानी में इधर-उधर हाथ-पाँव मारने लगा । मगर अब मैं पानी के चक्कर से न निकल सकता था यद्यपि मैंने इसके

लिए बहुत कुछ प्रयत्न किया।

इसके बाद मेरी स्मरण-शक्ति असम्बद्ध होने लगी....मेरे आदि पुरुष....कनखल....पुरानी कहानियों का राजकुमार....मृत्यु का रहस्य ....मुक्तिनाथ....कनखल....मृत्यु का रहस्य....इसके बाद एक नीला-सा अँधेरा छा गया। अँधेरे में कभी-कभी प्रकाश की एक झलक एक बड़े-से कीड़े के रूप में दिखायी देती....फिर पुरानी कहानियों का राजकुमार ....कण....मृत्यु....प्रक्रिया....निस्तब्धता और अँधेरा-ही-अँधेरा !

इस पूर्ण अचेतनता में मुझे एक बिन्दु-सा दिखायी दिया जो बराबर फैलता गया। शायद यह वही महाकण था जिसके बारे में मैंने बहुत कुछ कहा है। वह विस्तृत होता गया। फैलकर एक झिल्ली के रूप में मेरे शरीर के चारों ओर लिपट गया—इस प्रकार कि अब उसमें पानी नहीं घुस सकता था। मुझे ऐसा महसूस हुआ जैसे मैं किसी शून्य में हूँ, जहाँ साँस लेना भी एक तकल्लुफ़ है।

महाकण से आवाज़ आने लगी :

"मृत्यु की प्रक्रिया में तीन स्थितियाँ होती हैं—मृत्यु पूर्व, मृत्यु तथा मृत्यु पश्चात्। पहली स्थिति में सम्भव है कि दूसरी स्थिति आने के पहले तुम जीवित रह जाओ। स्वभावतः इस स्थिति में तुम्हें दूसरी स्थिति की अनुभूति नहीं हो सकती। दूसरी स्थिति में तुम उस बात को क्षणिक रूप से जान सकते हो, जिसकी तुम इतनी इच्छा लिये हुए हो, किन्तु उसे प्रकट नहीं कर सकते। मृत्यु के पश्चात् तुम्हें जीवन का पहला चिन्ह—वाग्शक्ति—दिया जाता है, फिर स्मरण-शक्ति को जो पहली और दूसरी स्थिति में तुम्हारे साथ होती है, विदा करना होता है। कण को विस्मरण देकर उस पर कृपा की जाती है, उसी भाँति जैसे मनुष्य को अदृश्य से अपरिचित रखकर उस पर कृपा की जाती

है।—वह रहस्य स्मरण-शक्ति के पूर्ण लोप में निहित है।"

"स्मरण-शक्ति का पूर्ण लोप," मैंने इन शब्दों को मन में दोहराते हुए कहा, "स्मरण-शक्ति का लोप—क्या हमारी नस्लें भी हमारी स्मरण-शक्ति हैं?....और क्या उसके पूर्ण लोप पर मैं वह रहस्य दुनिया वालों को बता सकता हूँ?....मैं जीवित रहना चाहता हूँ।"

—जीवन की इस इच्छा के साथ ही मैंने अपने को मुक्तिनाथ और धौलागिरि के आस-पास की पहाड़ियों में से बहकर आते हुए बर्फ़ीले पानी की सतह पर पाया। झिल्ली-सी मेरे शरीर से उतर चुकी थी। जीवन की एक और इच्छा के पैदा होते ही गंडक की सहायक नदी के एक रेले ने मुझे किनारे पर फेंक दिया। उस समय चाँदनी रात में हवा तेज़ी से चलकर साँस के रूप में मेरे एक-एक रोमकूप में प्रविष्ट हो रही थी।

★

लाजवन्ती

'हथ लाँयाँ कुमलान नी लाजवन्ती दे बूटे....'
(ऐ सखि, ये लाजवन्ती के पौधे हैं, हाथ लगाते ही कुम्हला जाते हैं)

बँटवारा हुआ और अनगिनत घायल लोगों ने उठकर अपने शरीर से खून पोंछ डाला, और फिर सब मिलकर उन लोगों की ओर आकर्षित हो गये, जिनके शरीर तो स्वस्थ थे, लेकिन दिल घायल थे।

गली-गली, मुहल्ले-मुहल्ले में 'फिर बसाओ' कमेटियाँ बन गयी थीं, और शुरू-शुरू में बड़े परिश्रम के साथ 'कारोबार में बसाओ,' 'धरती पर बसाओ' और 'घरों में बसाओ' प्रोग्राम शुरू कर दिया गया था। किन्तु एक प्रोग्राम ऐसा था, जिसकी ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। वह प्रोग्राम भगायी हुई औरतों के सम्बन्ध में था, जिसका नारा था—'दिल में बसाओ !' और नारायण बाबा के मन्दिर और उसके आस-पास बसने वाले पुरानपंथी दल की ओर से इस प्रोग्राम का बड़ा कड़ा विरोध हो रहा था।

इस प्रोग्राम को व्यावहारिक रूप में लाने के लिए मन्दिर के पास

मुहल्ला मुल्ला शकूर में एक कमेटी बन गयी और ग्यारह वोटों के बहुमत से सुन्दरलाल बाबू को उसका सेक्रेटरी चुन लिया गया। वकील साहब प्रधान हुए। चौकी कलाँ के बूढ़े मुहर्रिर और मुहल्ले के दूसरे प्रतिष्ठित लोगों का विचार था कि सुन्दरलाल से अधिक लगन से उस काम को कोई और न कर सकेगा, शायद इसलिए कि सुन्दर लाल की अपनी पत्नी भी इस दुर्घटना की चपेट में आ चुकी थी, जिसका नाम था लाजो—लाजवन्ती !

चुनांचे प्रभात-फेरी निकालते हुए जब सुन्दर लाल बाबू और उनके साथी रसालू, नेकीराम आदि गाते—'हथ लाँयाँ कुमलान नी लाजवन्ती दे बूटे.... ?' तो सुन्दर लाल का कंठ एकदम भर आता और वह खामोशी के साथ चलते-चलते लाजो के सम्बन्ध में सोचते—'जाने वह कहाँ होगी', 'वह कभी आयेगी भी या नहीं ?....' और पथरीली सड़क पर चलते-चलते उनके कदम लड़खड़ाने लगते।

और अब तो यह हालत हो गयी थी कि उन्होंने लाजवन्ती के सम्बन्ध में सोचना ही छोड़ दिया था; उनका दुख संसार का बन गया था, उन्होंने इस दुख से बचने के लिए अपने-आप को लोक-सेवा में डुबो दिया था। किन्तु इसके बावजूद साथियों के स्वर-में-स्वर मिलाते हुए उन्हें इसका विचार ज़रूर आ जाता—मनुष्य का हृदय कितना कोमल होता है ? ज़रा-सी बात पर उसे ठेस लग सकती है; वह लाजवन्ती की बेल की तरह है, जिसकी ओर हाथ बढ़ाओ, तो मुरझा जाय। परन्तु उन्होंने लाजवन्ती के साथ निर्ममता बरतने में भी कोई कसर न उठा रखी थी। वह उसे मौक़े-बेमौक़े, उठते-बैठते, खाते-पीते, लापरवाही दिखाते हुए, साधारण-सी बातों पर भी पीट दिया करते थे।

और लाजो एक दुबली-पतली देहाती लड़की थी। अधिक घाम

देखने के कारण उसका रंग सँवला गया था, उसकी तबीयत में एक अजीब तरह की व्याकुलता थी, लेकिन उसकी व्याकुलता ओस की उस बूँद की तरह थी, जो पाराक्रास के बड़े पत्ते पर इधर-उधर ढुलकती रहती है। उसका दुबलापन उसकी अस्वस्थता की दलील न थी, उलटे वह स्वास्थ्य की निशानी था जिसे देखकर भारी-भरकम सुन्दर लाल पहिले तो घबराये, लेकिन जब उन्होंने देखा कि लाजो हर तरह का बोझ, हर तरह का दुख, यहाँ तक कि मार-पीट तक को सहन कर लेती है, तो वह अपनी ज़्यादती क्रमशः बढ़ाते गये, और उन्होंने उन सीमाओं का भी विचार न किया, जहाँ पहुँचकर किसी मनुष्य का सब्र टूट सकता है, परन्तु लाजो थी कि उन सीमाओं को धुँधलाने की सामर्थ्य प्राप्त कर चुकी थी। वह बहुत देर तक दुखी हृदय लेकर बैठ नहीं सकती थी इसीलिए बड़ी-से-बड़ी लड़ाई के बाद सुन्दर लाल के केवल एक बार मुस्करा देने पर वह अपनी हँसी न रोक पाती और केवल इतना कह देती—'अबकी मारोगे तो मैं तुमसे कभी न बोलूँगी।' और साफ़ मालूम होता कि वह सारी मार-पीट को एकदम भूल चुकी है। गाँव की दूसरी लड़कियों की तरह वह भी जानती थी कि पति अपनी पत्नियों के साथ ऐसा ही व्यवहार किया करते हैं। यदि कोई पत्नी थोड़ी-सी भी मुँहजोर होती है तो औरतें खुद ही नाक पर उँगलियाँ रखकर कहतीं—'और वह भी कोई मर्द है कि दो हाथ की औरत क़ाबू में नहीं आती।'........और यह मार-पीट उनके गीतों में भी समा गयी थी। खुद लाजो गाया करती थी—'मैं शहर के जवान से शादी नहीं करूँगी। वह बूट पहनता है और मेरी कमर बड़ी पतली है।'........किन्तु पहले ही अवसर पर लाजो ने शहर के एक छोकरे से लौ लगा ली, जिसका नाम था सुन्दर लाल, जो एक बारात के साथ लाजवन्ती के

गाँव चला आया था और जिसने उस बारात के दूल्हे के कान में केवल इतना कहा था—'तेरी यह साली तो बड़ी नमकीन है यार, बीवी भी चटपटी होगी।' और लाजवन्ती ने सुन्दर लाल की इस बात को सुन लिया था और वह शायद यह भूल ही गयी कि सुन्दर लाल ने कितने बड़े-बड़े और भद्दे बूट पहन रखे हैं और उसकी अपनी कमर कितनी पतली है।

प्रभात फेरी के समय ऐसी ही बातें सुन्दर लाल को याद आतीं और वह यही सोचते, 'एक बार, केवल एक बार लाजो मिल जाय तो सचमुच ही मैं उसे दिल में बसा लूँ और लोगों को बता दूँ कि उन बेचारी औरतों के जाने में उनका कोई दोष नहीं है, दंगों की दुर्घटनाओं का शिकार हो जाने में उनकी कोई गलती नहीं और यह समाज, जो इन मासूम और निर्दोष औरतों को स्वीकार नहीं करता, उन्हें अपनाता नहीं, वह तो गला-सड़ा समाज है, जिसे मिटा देने में ही भला है।.....', वे भगायी हुई औरतों को घर में आबाद करने के विचार में निमग्न रहते और उन्हें उस पद पर आसीन देखना चाहते, जो घर में किसी भी औरत, किसी भी माँ, बेटी, बहन या पत्नी को शोभा देता है।

'दिल में बसाओ' प्रोग्राम को व्यावहारिक रूप में लाने के लिए मुहल्ला मुल्ला शकूर की इस कमेटी ने कई प्रभात-फेरियाँ निकालीं। सुबह चार-पाँच बजे का समय इसके लिए बड़ा उपयुक्त होता था। न लोगों का शोर, न सभाइयों की उलझन, रात-भर चौकीदारी करने वाले कुत्ते तक बुझे हुए तन्दूरों में सिर देके पड़े होते थे। अपने-अपने बिस्तरों में दुबके हुए लोग जागकर केवल इतना कहते थे।—'ओह! वही मण्डली है।' कभी शांति और कभी क्रोध से वे बाबू सुन्दर लाल का प्रचार सुना करते। वे औरतें जो बड़ी हिफ़ाज़त से इस पार पहुँच

गयी थी, गोभी के फूलों की तरह फैली पड़ी रहतीं और उनके पति या सम्बन्धी डंठलों की तरह अकड़े पड़े-पड़े प्रभात-फेरी के शोर पर भुनभुनाते हुए चले जाते, या कहीं कोई बच्चा थोड़ी देर के लिए आँखें खोलता और 'दिल में बसाओ' के फ़रियादी और करुण प्रचार को एक गाना समझकर फिर सो जाता।

लेकिन सुबह के समय कान में पड़ा हुआ शब्द अकारथ नहीं जाता, वह सारे दिन एक गूँज की तरह दिमाग़ में चक्कर लगाता है। कभी-कभी तो आदमी उसके अर्थ को न समझकर भी गुनगुनाता चला जाता है। इसी स्वर के मन में घर कर जाने की बदौलत ही था कि उन्हीं दिनों जब मिस मृदुला साराभाई पाकिस्तान से भगायी हुई स्त्रियाँ बदले में भारत लायीं तो मुहल्ला मुल्ला शकूर के कुछ आदमी उन्हें फिर से बसाने के लिए तैयार हो गये। उनके भाई-बन्धु शहर से बाहर चौकी कलाँ पर उनसे मिलने के लिए गये और बेचारी अबला स्त्रियाँ और उनके भाई-बन्धु कुछ देर एक दूसरे को देखते रहे और सिर झुकाकर अपने बरबाद घरों को आबाद करने के काम पर चल दिये। रसालू, नेकीराम और सुन्दर लाल बाबू कभी 'महेन्द्रसिंह ज़िन्दाबाद' और कभी 'सोहनलाल ज़िन्दाबाद' के नारे लगाते। और वे नारे लगाते रहे, इतना कि उनके गले सूख गये।

लेकिन भगायी हुई स्त्रियों में से कुछ ऐसी भी थीं, जिनके पति, माँ, बाप, बहन और भाइयों ने उन्हें पहचानने में असमर्थता प्रकट कर दी थी। 'आख़िर वे मर क्यों न गयीं, अपनी मर्यादा और लाज को बचाने के लिए उन्होंने विष क्यों नहीं पी लिया, कुओं में छलाँग क्यों न लगा दी? वे कायर थीं जो इस प्रकार जीवन से चिपटी रहीं। सैकड़ों-हज़ारों औरतों ने अपनी मर्यादा लुट जाने से पहले प्राण दे दिये।...'

किन्तु उन्हें क्या मालूम कि वे जीवित रहकर कितनी बहादुरी से काम ले रही हैं और किस तरह वे पथरायी निगाहों से मौत को घूर रही हैं— इस संसार में, जहाँ उनके पति तक उन्हें नहीं पहचानते। फिर उनमें से कोई मन-ही-मन अपना नाम दोहराती है—'सुहागवन्ती....सुहागवन्ती.... और अपने भाई को उस भीड़ में देखकर आखिरी बार इतना-सा कहती है—'तू भी मुझे नहीं पहचानता, बिहारी? मैंने तुझे गोदी में खिलाया रे....' और बिहारी चीख उठना चाहता है, फिर वह माँ-बाप की ओर देखता है, और माँ-बाप अपने कलेजे पर हाथ रखकर नारायण बाबा की ओर देखते हैं और बहुत ही बेबसी के भाव में नारायण बाबा आकाश की ओर देखते हैं जिसकी वास्तव में कोई यथार्थता नहीं है, जो केवल हमारी नज़र का धोखा है, जो केवल एक सीमा है जिसके पार हमारी निगाहें काम नहीं करतीं।

लेकिन फ़ौजी ट्रक में मिस साराभाई बदले में जो स्त्रियाँ लायीं, उनमें लाजो नहीं थी। सुन्दर लाल ने बड़ी निराशा से आखिरी लड़की को ट्रक से नीचे उतरते देखा और फिर उन्होंने बड़ी खामोशी और दृढ़ता से अपनी कमेटी की सरगर्मियों को बढ़ा दिया। अब वे सुबह ही के समय प्रभात फेरी के लिए नहीं निकलते, बल्कि शाम को भी वे जलूस निकालने लगे और कभी-कभी छोटी-मोटी सभा भी करने लगे, जिसमें उस कमेटी के बूढ़े सभापति वकील कालिका प्रसाद 'सूफ़ी' खँखारों से मिले-जुले भाषण दे दिया करते और रसालू पीकदान लिये ड्यूटी पर हमेशा मौजूद रहता। लाउडस्पीकर से अजीब तरह की आवाज़ें आतीं—'खा, हा, हा, खा, खा....' और फिर नेकीराम भी कुछ कहने के लिए उठते। परन्तु वे जितनी बातें कहते, उनमें शास्त्रों और पुराणों का उदाहरण देते, इतना कि अपने और अपने

सिद्धान्तों के विरुद्ध भी बहक जाते और इस प्रकार मैदान हाथ से जाता देखकर बाबू सुन्दर लाल उठते। लेकिन वे दो वाक्यों से अधिक कुछ न कह पाते। उनका गला भर आता और उनकी आँखों से आँसू टपकने लगते और वे रुआँसे होने के कारण भाषण पूरा नहीं कर पाते और अपनी जगह पर बैठ जाते। सुनने वालों पर एक विशेष प्रकार का मौन छा जाता और सुन्दर लाल के उन दो वाक्यों का असर, जो कि उनके दिल की गहराइयों से निकल आते थे, वकील कालिका प्रसाद 'सूफ़ी' के सारगर्भित उपदेशों के ऊपर छा जाता और लोग वहीं रोकर अपनी भावनाओं को शांत कर लेते। फिर....खाली मन लिये घर लौट जाते।

*

एक दिन कमेटी वाले शाम के समय भी प्रचार करने के लिए चले आये और होते-होते पुरान-पंथियों के दुर्ग में पहुँच गये। मन्दिर के बाहर पीपल के एक पेड़ के आस-पास सीमेंट के एक चबूतरे पर श्रद्धालु भक्तजन बैठे थे और रामायण की कथा हो रही थी। नारायण बाबा रामायण के लव-कुश-काण्ड का वह भाग सुना रहे थे, जहाँ एक धोबी ने अपनी धोबिन को घर से बाहर निकाल दिया था और उससे कह दिया था कि मैं रामचन्द्र नहीं, जिन्होंने इतने वर्ष रावण के साथ रह आने पर भी सीता जी को बसा लिया! और राजा रामचन्द्र जी ने महारानी सीता को अपने महल से निकाल दिया, उस हालत में, जबकि वे गर्भवती थीं। "क्या इससे भी बढ़कर कोई रामराज्य का उदाहरण मिल सकता है?" नारायण बाबा ने कहा, "यह है रामराज्य, जिसमें एक धोबी की बात को भी उतने ही महत्व की दृष्टि से देखा

जाता था....”

कमेटी का जलूस मन्दिर के पास रुक चुका था और लोग रामायण की कथा और श्लोकों के अर्थ सुनने के लिए ठहर गये थे। सुन्दर लाल ने आखिरी वाक्य सुना और कहा, “हमें ऐसी रामायण नहीं चाहिए बाबा।”

“चुप रहो जी, तुम कौन होते हो? खामोश!” भीड़ में से आवाज़ें आयीं।

और सुन्दर लाल ने बढ़कर कहा, “मुझे बोलने से कोई नहीं रोक सकता।”

मिली-जुली आवाज़ें आयीं, “खामोश! हम नहीं बोलने देंगे!”

और एक कोने से यह भी आवाज़ आयी—“मार देंगे!”

नारायण बाबा ने बड़ी मीठी आवाज़ में कहा—“तुम शास्त्रों की मान-मर्यादा को नहीं समझते, सुन्दर लाल।”

सुन्दर लाल ने कहा, “मैं एक बात तो समझता हूँ बाबा कि रामायण में धोबी की आवाज़ तो सुनी जाती है, किन्तु रामराज्य के चाहने वाले सुन्दर लाल की आवाज़ नहीं सुनते।”

उन्हीं लोगों ने, जो अभी मार-पीट पर तुले हुए थे, अपने नीचे से पीपल की गूलरें हटा दीं और फिर से बैठते हुए बोल उठे, “सुनो, सुनो, सुनो!........”

रसालू और नेकी राम ने सुन्दर लाल को बढ़ावा दिया और सुन्दर लाल बोले—

“श्री रामचन्द्र हमारे नेता थे, किन्तु यह क्या बात है बाबा जी, कि उन्होंने धोबी की बात को तो सत्य समझ लिया, परन्तु इतनी बड़ी सतवन्ती महारानी सीता के सतीत्व पर विश्वास नहीं कर पाये?”

नारायण बाबा ने अपनी दाढ़ी की खिचड़ी पकाते हुए कहा—

"सीता जी उनकी अपनी पत्नी थीं सुन्दर लाल। तुम उस बात की गहराई को नहीं जानते।"

"हाँ बाबा!" सुन्दर लाल ने कहा, "इस संसार में बहुत-सी बातें हैं, जो मेरी समझ में नहीं आतीं। परन्तु मैं सच्चा राम उसे समझता हूँ, जिसमें मनुष्य अपने आप पर भी अत्याचार न कर सके। अपने आप से अन्याय करना भी उतना ही बड़ा पाप है, जितना किसी दूसरे पर करना। और आज भी भगवान राम ने सीता जी को घर से निकाल दिया है....इसलिए कि वह रावण के पास रह आयी थीं, इसमें क्या दोष था सीता जी का? क्या वे भी हमारी बहुत-सी माँ-बहनों की तरह छल और कपट का शिकार न हुई थीं? इसमें सीता जी के सत्य और असत्य की बात है या राक्षस रावण के अत्याचार की बात है, जिसके दस सिर तो मनुष्य जैसे हैं और एक सबसे बड़ा सिर गदहे का है........आज हमारी सीता भी घर से निर्वासित कर दी गयी हैं.... सीता.... ...लाजवन्ती...." और सुन्दर लाल बाबू ने रोना शुरू कर दिया। रसालू और नेकी राम ने वह तमाम पोस्टर उठा लिये, जिन पर आज ही स्कूल के लड़कों ने बड़ी सफ़ाई से नारे काटकर चिपका दिये थे। और फिर वह सब 'बाबू सुन्दर लाल ज़िन्दाबाद' के नारे लगाते हुए चल दिये। जलूस में से एक ने कहा—"महासती सीता ज़िन्दाबाद!" एक ओर से आवाज़ आयी—"श्री रामचन्द्र........"

और फिर बहुत-सी आवाज़ें आयीं—"खामोश! ख़ामोश!"

और नारायण बाबा की कथा अकारथ हो गयी। बहुत से लोग जलूस में शामिल हो गये, जिसके आगे-आगे वकील कालिका प्रसाद और हुकुम सिंह मुहर्रिर चौकी कलाँ जा रहे थे, अपनी बूढ़ी छड़ियों को

ज़मीन पर पट-पट मारते, एक हल्की-सी आवाज़ करते हुए। उनके बीच में सुन्दर लाल जा रहे थे और उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे, आज उनके हृदय को बड़ी ठेस लगी थी और लोग बड़ी ख़ुशी के साथ एक-दूसरे के स्वर-में-स्वर मिलाकर गा रहे थे—

"हथ लाँयाँ कुमलान नी लाजवन्ती दे बूटे...."

*

अभी गीत की धुन लोगों के कानों में गूँज ही रही थी, सुबह भी नहीं हो पायी थी और मुहल्ला मुल्ला शकूर के मकान नं० ४१४ की विधवा अपने बिस्तर की तहों में विरह-भरी अँगड़ाई ले रही थी कि सुन्दर लाल का दोस्त लाल चन्द, जिसे अपने असर और रसूख का प्रयोग करके सुन्दर लाल और कालिका प्रसाद ने राशन डिपो दिलाया था, दौड़ा-दौड़ा आया और अपने गाढ़े की चादर से हाथ बाहर कर बोला—

"बधाई है बाबू सुन्दर लाल !"

सुन्दर लाल ने गुड़ तम्बाखू में मिलाते हुए कहा, "किस बात की बधाई, लाल चन्द ?"

"मैंने लाजो भाभी को देखा है !"

सुन्दर लाल के हाथ से चिलम छूट गयी और मीठी तम्बाखू फ़र्श पर फैल गयी। "कहाँ देखा है ?" उन्होंने लाल चन्द के कन्धों को पकड़कर पूछा और जल्दी उत्तर न पाने पर झकझोर दिया।

"वागह की सरहद पर।"

सुन्दर लाल ने लाल चन्द को छोड़ दिया और सिर्फ़ इतना कहा—"कोई और होगी ?"

लाल चन्द ने विश्वास दिलाते हुए कहा—"नहीं भइया, वह लाजो ही थी, लाजो !"

"तुम उसे पहचानते भी हो ?" सुन्दर लाल ने फिर से मीठी तम्बाखू को फ़र्श पर से उठाकर हथेली पर मलते हुए पूछा और ऐसा करते हुए उन्होंने रसालू की चिलम हुक्के पर से उठा ली और बोले—"भला क्या पहचान है उसकी ?"

"एक गुदना ठोढ़ी पर है, दूसरा गाल पर........"

"हाँ, हाँ, हाँ !" और सुन्दर लाल ने खुद ही कह दिया—"तीसरा माथे पर।" वह नहीं चाहते थे कि कोई सन्देह रह जाय और एकदम उन्हें लाजवन्ती के जाने-पहचाने शरीर के सारे गुदने याद आ गये, जो उसने अपने शरीर पर बचपन में गुदवाये थे। वे गुदने जो हल्के-हल्के, हरे-हरे दानों की तरह थे, जो छुई-मुई की बेलों के शरीर पर होते हैं, बिलकुल उसी तरह उन गुदनों की ओर इशारा करते ही लाजवन्ती शरमा जाती थी, जैसे उसके सारे भेद किसी को मालूम हो गये हों और किसी नामालूम खज़ाने के लुट जाने से वह दरिद्र हो गयी हो........और सुन्दर लाल का शरीर एक अनजानी मुहब्बत और उसकी पवित्रता से सिहरने लगा। उन्होंने फिर से लाल चन्द को पकड़ लिया और पूछा—"लाजो वागह कैसे पहुँच गयी ?"

लाल चन्द ने कहा—"भारत और पाकिस्तान में औरतों का बदला हो रहा था न...."

"फिर क्या हुआ ?" सुन्दर लाल ने उकड़ूँ बैठते हुए कहा।

रसालू भी अपनी चारपाई पर उठ बैठा और तम्बाखू पीने वालों की विशेष खाँसी खाँसते हुए बोला—"सचमुच आ गयी है लाजवन्ती भाभी ?"

लाल चन्द ने अपनी बात को जारी रखते हुए कहा—"वागह में सोलह औरतें पाकिस्तान में दे दीं और उसके बदले में सोलह औरतें ले लीं। लेकिन एक झगड़ा खड़ा हो गया। हमारे वालंटियर विरोध कर रहे थे कि तुमने जो औरतें दी हैं, उनमें अधेड़, बूढ़ी और बेकार औरतें ज्यादा हैं। इस झगड़े पर लोग इकट्ठे हो गये। उस समय उधर के वालंटियरों ने लाजो भाभी को दिखाते हुए कहा—'तुम इसे बूढ़ी कहते हो?....देखो, देखो, जितनी लड़कियाँ तुमने दी हैं, उन में से एक भी बराबरी करती है इसकी? और वहाँ लाजो भाभी सब की नज़रों के सामने अपने गुदने छिपा रही थीं।

"फिर झगड़ा बढ़ गया। दोनों ने अपना-अपना माल वापस लेने की ठान ली। मैंने शोर मचाया—'आओ लाजो भाभी!' मगर शोर मचाने पर हमारी फ़ौज के सिपाहियों ने हमें मार-मारकर भगा दिया।"

और लाल चन्द अपनी कोहनी दिखाने लगा, जहाँ उसे लाठी पड़ी थी।

रसालू और नेकी राम चुपचाप बैठे रहे और सुन्दर लाल कहीं दूर देखने लगे या शायद कुछ सोचने लगे—'लाजो आयी, पर न आयी ....' और सुन्दर लाल की सूरत से जान पड़ने लगा, जैसे वह बीकानेर के तपते हुए हज़ारों मील के रेगिस्तान को फाँदकर आये हैं और अब कहीं पेड़ की छाँव में ज़बान बाहर लटकाये हाँफ रहे हैं और मुँह से इतना भी नहीं निकलता, 'पानी दे दो।' उन्हें ऐसा अनुभव हुआ जैसे बँटवारे से पहले और बँटवारे के बाद की हिंसा अभी तक वैसी ही है, बल्कि और शक्ति पा गयी है, केवल उसकी सूरत बदली है, अब लोगों में आपसी सहानुभूति भी नहीं रही। किसी से पूछो, "साँभरवाल में लहनासिंह रहा करता था और उसकी भाभी बन्तो...."तो वह झट

से कहता, "मर गये।" और उसके बाद मौत और उसके अर्थ से बिलकुल बेख़बर, बिलकुल ख़ाली आगे चला जाता। इससे भी बढ़कर एक क़दम आगे, बिलकुल ठंडे हृदय से मानवता की जननी के सौदागर, मानवता के लोहू और माँस की सौदागरी और उसका लेन-देन करने लगे, जैसे मंडियों में मवेशी ख़रीदने वाले किसी भैंस या गाय का जबड़ा हटाकर दाँतों से उसकी उम्र का अन्दाज़ा करते हैं, उसी तरह वे जवान औरत के रूप, उसके निखार और उसके प्यारे रहस्यों और गुदनों की सरेआम प्रदर्शनी करने लगे, और यह संस्कार सौदागारों के रोम-रोम में बस गया था। पहले मंडी में माल-ताल बिकता था और भाव-ताव करने वाले हाथ मिलाकर, उस पर एक रूमाल डाल लेते और रूमाल के नीचे उँगलियों के इशारे से सौदा हो जाता था। अब तो जैसे वह रूमाल भी हट चुका था और सामने सौदे हो रहे थे, और लोग सौदागरी की परम्पराओं को भी भूल गये थे। वह सारा लेन-देन, वह सारा कारोबार, 'बोकाशयो' की कहानी मालूम हो रहा था—एक ऐसा वर्णन जिसमें औरतों के खुले क्रय-विक्रय की कहानी कही जाती है, और 'उज़बक' अनगिनती नग्न औरतों के सामने उनके शरीर को टोह-टोह के देख रहा है। जब वह किसी औरत के शरीर को उँगली से छूता है तो उस पर एक गुलाबी-सा गढ़ा पड़ जाता है और उसके गिर्द एक ज़र्द-सा घेरा और फिर वह ज़र्दी और सुर्ख़ी एक दूसरे की जगह लेने के लिए दौड़ पड़ती हैं।....उज़बक आगे निकल जाता है और निकाली हुई औरत एक पराजय की भावना हृदय में लेकर अपमान की ज्वाला में, एक हाथ से नाड़े को थामे और दूसरे से अपने चेहरे को लोगों की निगाहों से छिपाये सुबकियाँ लेती है। कुछ आगे चलकर उसमें जैसे पराजय की भावना भी नहीं रह जाती। वह उसी

तरह नंगी 'सिकन्दरिया' के बाज़ारों में से गुज़रती हैं, और फिर 'त्राइफ़ेरा' के रूप में अपनी सहेली 'सैसो' से कहती है, ' सैसो, यह कौन ज़ालिम मसखरा है जिसने सामने की दीवारों पर लिख दिया है—

'बाकिस
थेरसाइटिस के लिए
दो 'ओबली' (एक छोटा सिक्का) में ।'

और फिर वह कहती है, "दो ओबली में !"

और फिर सैसो कहती है, "मर्दों को यों हमारा मज़ाक उड़ाने की इजाज़त नहीं होनी चाहिए। यदि बाकिस की जगह मैं होती, तो ज़रूर पूछ-ताँछ करती...." और सैसो दो ही क़दम आगे बढ़ती है कि उसे दीवार पर लिखा हुआ मिलता है—

'निदूस की सैसो
टायमन के लिए
एक मिना (एक बड़ा सिक्का) में........'

थोड़ी देर में सैसो का रंग पीला होता है और फिर वह उस लिखावट के नीचे खड़ी हो जाती है, और इन्तज़ार करती है, जब कि बाकी औरतें उसे ईर्षा और द्वेष की निगाहों से देखते हुए गुज़रने लगती हैं....।

*

सुन्दर लाल अमृतसर की सीमा पर जाने की तैयारी कर ही रहे थे कि उन्हें लाजो के आने की खबर मिली। एकदम इस खबर के मिलते ही सुन्दर लाल घबरा गये, उनका एक कदम फ़ौरन दरवाज़े की ओर बढ़ा, किन्तु वह फिर पीछे लौट आया। उनका जी चाहता था

कि वे रुक जायें और कमेटी के तमाम 'प्ले-कार्डों' और 'पोस्टरों को बिछाकर बैठ जायें और खूब जी भरकर रोयें। किन्तु वहाँ भावनाओं का इस प्रकार प्रदर्शन मुमकिन नहीं था। उन्होंने अपने पुरुष के पुरुषत्व से खींचातानी की, प्रतिरोध किया और अपने डगों से धरती को नापते हुए चौकी कलाँ की ओर चल दिये। यही वह जगह थ:, जहाँ भगायी हुई औरतों की डिलीवरी दी जाती थी।

अब लाजो सामने खड़ी थी और किसी आशंका से काँप रही थी, वह सुन्दर लाल को जानती थी, उसके सिवा उन्हें कोई नहीं जानता था। वह पहले ही उसके साथ बुरा बर्ताव करते थे, और अब जबकि वह पराये मर्द के साथ जीवन के कितने ही दिन बिताकर आयी थी, न जाने क्या करेंगे? सुन्दर लाल ने लाजो की ओर देखा, वह शुद्ध इस्लामी ढंग का काला दुपट्टा ओढ़े हुए थी और बायाँ पल्ला डाले हुए थी....आदत, केवल आदत....दूसरी आदतों में घुल-मिल जाने और अपने पिंजरे से भाग जाने की आसानी थी! परन्तु वह सुन्दर लाल के सम्बन्ध में इतना अधिक सोच रही थी कि उसे अपने कपड़े बदलने और दुपट्टा ठीक से ओढ़ने की भी सुध न थी। वह हिन्दू और मुसलमान के बुनियादी अंतर 'दायाँ पल्ला, बाँया पल्ला' के गुण-दोष परखने में भी असमर्थ थी। अब वह सुन्दर लाल के सामने खड़ी थी और काँप रही थी, एक आशा और निराशा के भय की भावना के साथ।

सुन्दर लाल को धक्का-सा लगा। उन्होंने देखा, लाजवन्ती का रंग पहले से कुछ निखर गया था और वह पहले की अपेक्षा स्वस्थ भी नज़र आती थी। नहीं, वह मोटी भी हो गयी थी। सुन्दर लाल ने जो कुछ लाजो के सम्बन्ध में सोच रखा था, वह सब झूठ था। वे समझते

थे, दुःख में घुल जाने के कारण लाजवन्ती बिलकुल मरियल हो चुकी होगी और आवाज़ उसके मुँह से निकाले भी न निकलती होगी। इस विचार से कि वह पाकिस्तान में बड़ी खुश रही है, उन्हें ठेस-सी लगी। किन्तु वे चुप रहे, क्योंकि उन्होंने चुप रहने की सौगन्ध खा रखी थी, यद्यपि वे नहीं जान पाये कि अगर वहाँ इतनी खुश थी तो चली क्यों आयी? उन्होंने सोचा, शायद भारत सरकार के दबाव के कारण उसे अपनी मर्ज़ी के विरुद्ध यहाँ आना पड़ा है, किन्तु वह एक चीज़ समझ नहीं सके कि लाजवन्ती का सँवलाया हुआ चेहरा ज़र्दी लिये हुए था, और क्लेश, केवल क्लेश के कारण उसके शरीर पर माँस ने हड्डियों को छोड़ दिया था, वह दुख की मार से मोटी हो गयी थी और स्वस्थ-सी नज़र आती थी। लेकिन वह ऐसा मुटापा था, जिसमें दो क़दम चलने पर आदमी की साँस फूल जाती है।

लाजो के चेहरे पर पहली निगाह पड़ने का प्रभाव कुछ अजीब-सा हुआ, लेकिन अपने सारे विचारों का उन्होंने दृढ़ता से मुकाबिला किया। और भी बहुत से लोग मौजूद थे, किसी ने कहा—

"हम नहीं लेते मुसलमान की जूठी औरत!"

और यह आवाज़ रसालू, नेकी राम और चौकी कलाँ के बूढ़े मुहर्रिर के नारों में गुम होकर रह गयी। उन सब आवाज़ों से अलग कालिका प्रसाद की फटी और चिल्लाती हुई आवाज़ आ रही थी। वह खाँस भी लेते थे और बोलते भी जाते। वे इस नयी यथार्थता, इस नये सिद्धान्त के अनुयायी हो चुके थे। ऐसा जान पड़ता था, जैसे आज उन्होंने कोई नया वेद, नया पुराण और शास्त्र पढ़ लिया है और अपने इस हिस्से में दूसरों को भी साझीदार बनाना चाहते हैं।

उन सब लोगों और उन सारी आवाज़ों में घिरी हुई लाजो और

सुन्दर लाल अपने डेरे को जा रहे थे और ऐसा जान पड़ता था, जैसे हज़ारों वर्ष पहले के श्री रामचन्द्र और सीता जी किसी नैतिक बनवास के बाद अयोध्या में प्रवेश कर रहे हों। और उधर एक ओर लोग खुशी से दीप-मालाओं को सजा रहे थे और दूसरी ओर उन्हें इतनी तपस्या के कष्ट के बाद फल मिलने के सुअवसर पर बधाई दे रहे थे।

*

लाजवन्ती के आ जाने पर भी सुन्दर लाल ने उसी परिश्रम से 'दिल में बसाओ' आन्दोलन को जारी रखा। जो करनी-कहनी थी, उसे निभा दिया था और उन लोगों ने, जिनको सुन्दर लाल की बातों में खाली-खूली भावुकता नज़र आती थी, क़ायल होना शुरू कर दिया।

लेकिन सुन्दर लाल बाबू को किसी की परवाह और बेपरवाही की चिन्ता नहीं थी। उनके हृदय की देवी लौट आयी थी, उनके दिल का गढ़ा भर चुका था। सुन्दर लाल ने लाजो की स्वर्ण-मूर्ति को अपने मन-मन्दिर में बसा लिया था और खुद दरवाज़े पर बैठकर उसकी पूजा करने लगे थे। लाजो, जो पहले भय से सहमी रहती थी, धीरे-धीरे सुन्दर लाल की उदारता देखकर खुलने लगी थी।

सुन्दर लाल लाजवन्ती को अब 'लाजो' के नाम से नहीं पुकारते थे, वे उसे कहते थे 'देवी'।

और लाजो एक अनजानी खुशी से पागल हुई जाती थी। वह कितना चाहती थी कि सुन्दर लाल से अपनी राम कहानी कह सुनाये और सुनाते-सुनाते इतना रोये कि उसके सारे अपराध धुल जायें।

लेकिन सुन्दर लाल लाजो की वे बातें सुनना स्वीकार नहीं करते। और लाजो अपने खुल जाने में भी एक प्रकार से सहमी रहती और

अपनी इस चोरी में पकड़ी जाती। जब सुन्दर लाल इसका कारण पूछते तो वह, 'नहीं', 'योंही', 'ऊँ हूँ' के सिवा और कुछ न कहती और सारे दिन के थके-माँदे सुन्दर लाल फिर ऊँघ जाते।

हाँ, शुरू-शुरू में एक बार सुन्दर लाल ने लाजवन्ती के 'काले दिनों' के बारे में केवल इतना-सा पूछा था, "कौन था वह ?"

लाजवन्ती ने निगाहें नीची करते हुए कहा, "जुम्मा !" फिर अपनी निगाहें सुन्दर लाल के चेहरे पर जमाये कुछ कहना चाहती थी, लेकिन सुन्दर लाल एक अजीब-सी नज़रों से लाजवन्ती के चेहरे की ओर देख रहे थे अ र उसके बालों को सुलझा रहे थे। लाजवन्ती ने फिर आँखें नीची कर लीं और सुन्दर लाल ने पूछा, "अच्छा व्यवहार करता था वह ?"

"हाँ !"

"मारता तो नहीं था ?"

लाजवन्ती ने अपना सिर सुन्दर लाल की छाती से सटाते हुए कहा, "नहीं तो।...."

और फिर बोली, "उसने मुझे कुछ नहीं कहा, यद्यपि वह मारता नहीं था, परन्तु उससे अधिक मुझे डराता था। तुम मुझे मारते थे, पर मैं तुमसे डरती नहीं थी....अब तो न मारोगे ?"

सुन्दर लाल की आँखों में आँसू छलक आये और उन्होंने बड़ी लज्जा और दुख-भरे स्वर में कहा, "नहीं देवी, अब नहीं मारूँगा, नहीं मारूँगा !"

'देवी !' लाजवन्ती ने सोचा। और वह आँसू बहाने लगी।

और उसके बाद लाजवन्ती सब-कुछ कह देना चाहती थी, लेकिन सुन्दर लाल ने कहा, "जाने दो बीती बातें। उसमें तुम्हारा क्या

अपराध है ? उसमें अपराध है हमारे समाज का, जो तुम जैसी देवियों को उनका पद नहीं सौंपता। इससे वह तुम्हारी हानि नहीं करता, खुद की हानि करता है !"

और लाजवन्ती की मन-की-मन में ही रही, कह न सकी सारी बात, चुपकी-दुबकी पड़ी रही और अपने शरीर की ओर देखती रही, जो कि बँटवारे के बाद अब देवी का शरीर हो गया था, वह शरीर लाजवन्ती का शरीर नहीं था। वह खुश थी, बहुत खुश, लेकिन एक ऐसी अजीब-सी खुशी, जिसमें आशंका और भय की पुट थी, और कई बार वह लेटी-लेटी अचानक चौंककर बैठ जाती जैसे अत्यधिक खुशी के क्षण में कोई आहट पाकर एकाएक आहट की ओर आकर्षित हो जाय।

और अन्त में जब बहुत से दिन बीत गये तो खुशी का स्थान दुख ने ले लिया। इसलिए नहीं कि बाबू सुन्दर लाल ने फिर वही पुरानी पशुता दिखायी थी, बल्कि इसलिए कि वह लाजो से बहुत अच्छा सलूक करने लगे थे—ऐसा सलूक, जिसकी लाजो को आदत नहीं थी। वह सुन्दर लाल की वही पुरानी लाजो हो जाना चाहती थी, जो गाजर से लड़ पड़ती और मूली से मान जाती। किन्तु अब लड़ाई का सवाल ही नहीं था। सुन्दर लाल ने उसे यह अनुभव करा दिया कि जैसे वह लाजवन्ती, काँच की कोई चीज़ है, जो छूते ही टूट जायगी—और लाजो दर्पण में अपने को सिर से पाँव तक निहारती, और अन्त में इस निर्णय पर पहुँचती कि वह और तो सब-कुछ हो सकती है, परन्तु लाजो नहीं बन सकती।....वह बस गयी, पर उजड़ गयी........।

सुन्दर लाल के पास उसके आँसू देखने के लिए न आँखें थीं, न

आहें सुनने के लिए कान ! मुहल्ला मुल्ला-शकूर के सबसे बड़े सुधारक खुद भी न जान सके कि मनुष्य का हृदय कितना कोमल होता है !.... प्रभात फेरियाँ निकलती रहीं और रसालू और नेकी राम के साथ मिलकर वे एक मशीनी आवाज़ में गाते रहे—

"हथ लाँयाँ कुमलान नी लाजवन्ती दे बूटे"

☆